हरिद्वार से बदरीनाथ का यात्रा-मार्ग

(मानचित्र पैमाने के अनुसार नहीं है)

टेहरी से यमुनोत्री और गंगोत्री का यात्रा-मार्ग

(मानचित्र पैमाने के अनुसार नहीं है)

उत्तराखंड की यात्रा

उत्तराखंड की यात्रा

डा० एस० केशवमूर्ति

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राक्कथन

राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न विषयों में अच्छे पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के साथ-साथ हमारी परिषद् छात्रों के उपयोग के लिए पूरक अध्ययन की पुस्तकें भी समय-समय पर तैयार करवाती रही है। इस क्षेत्र में अब तक पचास से अधिक पुस्तकें हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में प्रकाशित की जा चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक इसी शृंखला में तैयार की गई एक और कड़ी है।

पुस्तक के लेखक हमारे ही सहयोगी डा० एस० केशवमूर्ति हैं जो इस समय मैसूर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय मे हिन्दी के प्राध्यापक है। डा० केशवमूर्ति ने उत्तराखंड की यात्रा अपनी रुचि की दृष्टि से की थी और उसी दृष्टि से उन्होंने इस यात्रा का वर्णन भी लिखा था। किन्तु परिषद् के कुछ कार्यकर्ताओं ने जब उस वर्णन को पढ़ा तो उन्हें लगा कि इससे न केवल विद्यार्थियों को, अपितु प्रौढ़ों को भी उत्तराखड की बहुत रोचक जानकारी मिल सकेगी। इस दृष्टि से हमने इस पुस्तक को कुछ गोष्ठियों में सपादित कर वर्तमान रूप प्रदान करने के लिए डा० केशवमूर्ति से कहा।

इस पुस्तक की भाषा और शैली बहुत ही सहज और रोचक है। एक अहिन्दी भाषी विद्वान के द्वारा इतनी सुन्दर पुस्तक लिखी गई है, यह और भी श्रेय की बात है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक का भारत के विभिन्न भागो में स्वागत होगा और इसके अध्ययन से छात्रों मे उत्तराखड की तथा भारत के अन्य भागों की यात्रा करने में रुचि उत्पन्न होगी। इस पुस्तक का कथ्य और भाषा-शैली 14 से 17 वर्ष के आयु वर्ग के बालकों के लिए उपयुक्त है, किन्तु विषय की रोचकता और भाषा की सरलता के कारण युवा और प्रौढ़ व्यक्ति भी इसके अध्ययन से लाभ उठा सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है। हम चाहेंगे कि इस प्रकार के और भी यात्रा-वर्णन छात्रों और प्रौढ़ों के लिए हम लोग प्रस्तुत कर सकें।

मैं पुस्तक के लेखक डा० केशवमूर्ति को उनके इस सफल प्रयास के लिए हार्दिक बधाई और धन्यवाद देता हूँ। पुस्तक के संपादन में श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', श्री प्रभाकर द्विवेदी, प्रो० अनिल विद्यालंकार, श्री निरंजनकुमार

सिंह, डा० शशिकुमार शर्मा, डा० रामजन्म शर्मा और डा० अनिरुद्ध राय ने विशेष रूप से योग दिया है। मैं इन सबके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक में छपे सभी छायाचित्र हमे उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। आवरण पर जिस पारदर्शी को छापा गया है वह डा० ध्रुवज्योति लाहिड़ी की खींची हुई है। मैं इनका विशेष आभारी हूँ।

पी०एल० मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
मई 1986

अनुक्रम

	पृष्ठ
प्राक्कथन	v
हरिद्वार	1
ऋषिकेश	9
बदरीनाथ	12
केदारनाथ	28
यमुनोत्री	36
गंगोत्री	46
उपसंहार	62

हरिद्वार

हरिद्वार दिल्ली से पूर्वोत्तर दिशा में 263 कि०मी० की दूरी पर स्थित है। यह शिवालिक पहाड़ी का पाद-प्रक्षालन करनेवाली गंगा के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। नगाधिराज हिमालय के वक्ष से उतरकर पुण्यसलिला गंगा प्रथम बार यहाँ समतल प्रदेश में प्रवेश करती है। हरिद्वार को हरद्वार भी कहते हैं, क्योंकि 'हरि' और 'हर' अर्थात् विष्णु और शिव के धामों के लिए यही प्रवेश द्वार है। अतः दोनों नाम प्रचलित है। श्रद्धालु जन हरिद्वार में स्नान करने के बाद हिमालय के आँचल में स्थित बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री, गंगोत्री आदि की यात्रा प्रारंभ करते हैं।

हरिद्वार पुराने जमाने में मायावती के नाम से प्रसिद्ध था। चीनी यात्री ह्वेनसाङ ने अपने यात्रा-वर्णन में इसका नाम 'मो-यू-लो' लिखा है। कहा जाता है कि कपिल मुनि के शाप से राजा भगीरथ के पूर्वज भस्म हो गए थे। उनके उद्धार के लिए गंगा का अवतरण आवश्यक था। इसके लिए भगीरथ ने कठिन तपस्या की और गंगा को उतार लाने मे वे सफल हुए। इस कथा से संबंधित होने के कारण हरिद्वार कपिल स्थान के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसे गंगाद्वार भी कहते है।

पुराणो में प्राप्त एक अन्य विवरण से भी हरिद्वार के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। अमृत प्राप्त करने के लिए सुरो और असुरों ने समुद्र का मंथन किया था। इससे जो चौदह रत्न प्राप्त हुए, उनमे से एक अमृत-कलश भी था। सुर और असुर दोनों उस पर अपना अधिकार चाहते थे। कलश सुरों के हाथ पड़ गया था इसलिए वे उसे लेकर भागे। असुरों ने उनका पीछा किया। वे बारह दिन और बारह रात लगातार सुरों के पीछे दौड़ते रहे। इस भाग-दौड़ में सुरों ने अमृतकलश को देवलोक के आठ स्थानों के साथ-साथ हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में भी रखा था जहाँ अमृत की कुछ बूँदे गिर गई थीं। अतः इसकी पवित्र स्मृति मे इन चारो जगहों पर हर बारहवे वर्ष कुंभ का पर्व मनाया जाता है। देश भर के श्रद्धालु जन यहाँ स्नान करने के लिए आते है। कुंभ-पर्व पर इन स्थानो मे स्नान करना मोक्षदायक माना जाता है।

अपनी विशालता मे ये मेले विश्व के सबसे बड़े मेले है। इनमें भारत की सांस्कृतिक एकता के दर्शन होते है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शुक्र और बृहस्पति कुंभ राशि पर तथा सूर्य और चंद्र क्रमश: मेष और धनु राशि पर होते है, तभी कुंभ मेला लगता है। यह स्थिति बारह साल मे एक बार आती है। छह वर्ष पर अर्धकुंभ का मेला लगता है।

हरिद्वार का क्षेत्रफल 10.4 वर्ग किलोमीटर है। यह समुद्रतल से 294 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। अप्रैल से नवंबर तक का मौसम अत्यंत सुहावना होता है। पर यात्रियो की भीड़ बारहो महीने लगी रहती है। सर्दी मे काफी ठंड पड़ती है। गर्मियों मे दिन गर्म और राते ठंडी रहती है। लोग गर्मियों में सूती और सर्दी मे ऊनी कपड़े पहनते है। मुख्य भाषा हिन्दी है। पर यात्रा स्थान होने के कारण अन्य भाषाएँ भी लोग आसानी से समझ जाते है। अंग्रेजी से भी काम चलता है। यात्रियो के ठहरने के लिए अनेक धर्मशालाएँ है। उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से भी पर्यटक आवास-गृह है। इसके अलावा होटल और अन्य आवास-स्थान भी ठहरने के लिए मिल जाते है।

हम लोग दिल्ली से ट्रेन द्वारा हरिद्वार पहुँचे। नई जगह होने के कारण रहने की व्यवस्था करने मे कुछ असुविधा होना स्वाभाविक था। पर सुरसरि के तट, विशेष रूप से हरि की पैड़ी के दर्शन और स्नान ने सारी क्लांति हर ली।

'हरि की पैड़ी' एक अत्यंत प्राचीन स्नान-घाट है, जहाँ श्री विष्णु के पैरों की छाप पत्थर की दीवार पर अंकित है। यह ब्रह्मकुंड के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी जगह पर राजा श्वेत ने ब्रह्मा की तपस्या की थी और वरदान प्राप्त किया था। अतः इसका नाम ब्रह्मकुंड पड़ा। यही राजा भर्तृहरि ने बड़ी कठिन तपस्या की थी। उनके भाई विक्रमादित्य ने यहाँ पर घाट और पैड़ियों का निर्माण किया। यहाँ हरिचरण मंदिर, राजा मानसिंह की छतरी, गंगा जी का मन्दिर आदि दर्शनीय स्थान है।

हरि की पैड़ी पर घंटाघर के सामने एक चबूतरा है। चबूतरा इतना विशाल है कि हजारों लोग एक साथ [illegible] आ-जा सकते हैं। [illegible] बड़ी [illegible] बनाए [illegible]। यात्रीगण [illegible] पकड़ कर स्नान करते [illegible]।

स्नान घाट पर [illegible]। [illegible] मछली पकड़ना मना है। मछलियों [illegible] है। आप गोलियाँ खरीदकर [illegible] पानी में फेंकिए, उसे [illegible] मछलियाँ [illegible] है। [illegible] देखने योग्य है।

शाम का समय अत्यंत सुहावना होता है। यद्यपि गंगा जी की आरती शाम के सात बजे शुरू होती है, फिर भी पाँच बजे से ही भीड दोनों किनारे जम जाती है। सैकड़ो लोग फूल भरे दोनों में घी का दीप जलाकर गंगा में बहा देते हैं। गंगा मे सैकड़ो तैरते हुए दीप मन को मोह लेते है। मैने भी कई दीप बहाए।

हरिद्वार मे बहुत-से घाट है। सुभाष-घाट पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस की संगमरमर की एक मूर्ति स्थापित है। इसी घाट पर कथा, कीर्तन और भजन हुआ करते हैं, जिनमें हजारो की सख्या में लोग भाग लेते है। शाम के समय अनगिनत नर-नारी अपने बच्चो सहित बैठकर गगा की धारा के दर्शन का आनंद लेते है। यहाँ कई सेवा-समितियों के दफ्तर है जिनके कार्यकर्ता यात्रियों की सेवा करते हैं। रोगियो को मुफ्त दवा बाँटी जाती है और गरीबो को रोटियाँ।

आगे चलें तो कुशावर्त घाट मिलेगा जहाँ अहल्याबाई ने अपनी सारी संपत्ति गरीबो मे बाँट दी थी। श्रवणनाथ घाट के पास श्रवणनाथ का मंदिर है। गणेशघाट छोटे-छोटे मदिरों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ हनुमान का मंदिर है जिसमे उनकी बहुत बड़ी मूर्ति है। इसके आगे गोघाट है जहाँ लोग प्रायश्चित करने के लिए जाते है। गोघाट के सामने एक बड़ा मैदान है जिसमे कुंभ और अर्द्धकुभ के समय विभिन्न प्रकार के मनोरंजक कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

हरिद्वार में चद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, पूर्णमासी, अमावस्या एव गंगा दशहरा पर भी काफी भीड़ होती है और मेले लगते है।

हरिद्वार में स्थित श्री गोरखनाथ का गुप्त मदिर दर्शनीय है। श्री काल भैरव मंदिर एव वहाँ सगमरमर से बनी विश्वरूपदर्शन की मूर्ति अपनी सुन्दरता मे अद्वितीय है। इनके अतिरिक्त यहाँ और भी अनेक मंदिर है। यहाँ के देव-मंदिरो मे सोने-चाँदी के गहनों से मूर्तियों को अलकृत करने की प्रथा नहीं है। केवल चमकदार कपड़े और नकली मणियो की माला पहनाते है। न तो यहाँ दक्षिण के मदिरो की भाँति नारियल फोडकर पूजा करते हैं न केला जैसा फल भोग मे चढता है। आरती कपूर की नही, घी की बत्ती की होती है। जब दक्षिण भारत के लोग मदिर में देवताओं के दर्शन करते है तब यह महसूस करते है कि देवताओं के अलंकार मे सोने-चाँदी के जेवरों की कमी है। उनके यहाँ तो देवताओं के हजारो-करोड़ो रुपयो के सोने-चाँदी के जेवर होते हैं।

हरिद्वार मे मद्य-मांस-मछली का सेवन निषिद्ध है। हर कही शाकाहारी भोजन मिलता है। धार्मिक टोकरियों के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। मनोरंजन के लिए अनेक सिनेमा गृह है। यहाँ तीन बाजार है — मोती बाजार, बड़ा बाजार और अपर रोड बाजार।

हरिद्वार से चार किलोमीटर दूर भीमगोड़ा है। यहाँ एक छोटा-सा तालाब,

एवं भीम का मंदिर है। कहा जाता है कि प्यास लगने पर पांडुनंदन भीम ने इस सरोवर को अपने घुटनों से खोदा था। उस समय पांडव हिमालय की यात्रा पर थे।

भीमगोड़ा का नहर-निकास दर्शनीय स्थान है। यहाँ जाने के लिए मैंने गंगा नहर, हरिद्वार के सहायक अभियंता से अनुमति ले ली थी, क्योंकि बिना अनुमति के यहाँ नहीं जा सकते। यहीं से ऊपरी गंगा-नहर निकली है। गंगा-नहर का निर्माता 'काटले' नामक एक अंग्रेज इंजीनियर था। इस नहर से उत्तर प्रदेश के एक विशाल भू-भाग की सिंचाई होती है। साथ ही इस पर बिजली घर भी बनाए गए हैं।

सबको मोहित करने वाला स्थान है सप्तऋषि आश्रम एवं सप्त सरोवर। यह हरिद्वार से पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सप्त गोत्र के प्रवर्तक ऋषिगण गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप और अत्रि है। इन सात ऋषियों की तपस्या में बाधा न डालकर उनके लिए रास्ता छोड़, उनकी कुटियों के सामने ही बहती है सात धाराओं में विभक्त होकर गंगा। वहाँ जाते ही मन स्नान करने को ललच उठा और मैं आधे घंटे तक गंगा में नहाता रहा। शांत वातावरण में स्थित आश्रम की शोभा अवर्णनीय है। वहीं ठहर जाने के लिए मन लालायित हो उठता है। यहाँ पर यात्रियों के ठहरने के लिए किराए पर आवास-गृह भी मिलते हैं। इच्छा होते हुए भी मैं वहाँ ठहर न सका, क्योंकि पट खुलने के दिन बदरीनाथ पहुँचना था।

आश्रम का घेरा लगभग एक किलोमीटर है। इसके अंदर शंकर, लक्ष्मी और सरस्वती के मंदिर हैं जिनमें संगमरमर की सुन्दर मूर्तियाँ स्थापित हैं। आश्रम में एक वेद-पाठशाला भी है, जहाँ अनेक कवियों के नाम कक्षों पर अंकित हैं जैसे—कालिदास-कक्ष, भास-कक्ष, भवभूति-गृह आदि। यहाँ एक वेधशाला भी है, जो मानसिंह के जमाने की है।

आश्रम के बाहर पंचमुखी हनुमान, राधाकृष्ण, सीताराम एवं गणेश जी के अलग-अलग मंदिर हैं। यहाँ से कुछ दूर आगे बढ़े तो परमार्थ आश्रम मिलता है जो अपने नाम के अनुरूप है। यहाँ रामायण, महाभारत, पुराणों की कथाओं आदि के आधार पर कई घटनाएँ और कथा-प्रसंग मनोरम शिल्प द्वारा दर्शित हैं। दर्शक अपना हृदय यहाँ खो बैठते हैं। यहाँ एक ऐसा शिवलिंग है जिस पर एक हजार आठ छोटे-छोटे शिवलिंग अंकित हैं। दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मीनारायण की मूर्तियों के सैकड़ों बिंब आइनों के द्वारा प्रतिबिंबित हैं।

हरिद्वार से लगभग छह किलोमीटर की दूरी पर स्वामी श्रद्धानंद जी द्वारा स्थापित प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है। संस्कृत और आयुर्वेद की शिक्षा के लिए यह विशेष प्रसिद्ध है। विदेश से भी लोग यहाँ आकर पढ़ते हैं।

हरिद्वार से चार किलोमीटर दूर स्थित कनखल मे दक्षेश्वर महादेव मंदिर है। कहा जाता है कि सती के पिता दक्ष प्रजापति ने यहाँ महायज्ञ किया था। दक्ष अपने दामाद भगवान् शकर से बहुत असंतुष्ट रहते थे। अतः उन्होने उन्हें उस यज्ञ में नहीं बुलाया। शकर के मना करने पर भी सती अपने पिता के महायज्ञ मे पहुँची। पर दक्ष प्रजापति ने उनका भी अपमान किया। इस पर सती ने उसी यज्ञ-कुड मे कूदकर अपने प्राणो की आहुति दे दी। जब यह खबर शिवजी को मिली, तो वे क्रोधाभिभूत हो उठे। उनके गणो ने यज्ञ को विध्वस कर दिया एवं दक्ष का सिर काट डाला। भगवान् विष्णु के प्रयत्न से शकर का क्रोध शांत हुआ। इसकी याद मे इस जगह पर दक्षेश्वर महादेव मदिर की स्थापना की गई है। उसके समीप ही सती-ताल भी है। यहाँ दक्ष-यज्ञ की कहानी चित्रों द्वारा मंदिर मे अकित है। यह दक्ष-मदिर पचतीर्थो मे से एक माना जाता है।

हरिद्वार मे स्थित बिल्व पर्वत पर मनसा देवी का मंदिर है। चढ़ाई बड़ी कठिन है, यद्यपि सीढ़ियाँ बनी हुई है। यदि प्रातःकाल चढ़ेगे तो चढ़ने में कठिनाई महसूस न होगी। मै अपने परिवार के साथ सवेरे ही पहाड पर चढा था। ऊपर से हरिद्वार का दृश्य अति सुन्दर दीख पड़ता है। अब रज्जु-मार्ग बन जाने से यहाँ पहुँचना सरल हो गया है।

नील पर्वत पर चंडी देवी का मंदिर है जिसका निर्माण जम्मू के महाराज सरजीत सिंह ने सन् 1829 ई० मे कराया था। गंगा को पार कर मदिर जाना पडता है। वहाँ गौरीशकर, नीलेश्वर महादेव तथा हनुमान जी की माता अजनादेवी का मदिर है।

हरिद्वार के पास एक ओर भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स का बहुत बड़ा सरकारी कारखाना है जिसमें विद्युत उत्पादन के विशाल उपकरण तैयार किए जाते है। दूसरी ओर औषधि-निर्माण का नवीनतम केन्द्र है जो जीवनदायिनी दवाओं के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है। इन दोनों संस्थाओ की स्थापना से हरिद्वार को नवीन महत्त्व मिल गया है और यह स्थान धार्मिक मान्यता और वैज्ञानिक प्रगति का अद्भुत संगम हो गया है।

मनुष्य समाज मे सब जगह अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। जो अच्छे हैं, हर कहीं अच्छे होते हैं। बुरों के लिए तो तीर्थ की पवित्रता का भी कोई महत्त्व नही। इसका कटु अनुभव मुझे पहले ही दिन हो गया जबकि स्नान करते समय किसी ने बडी चतुराई से मेरे बैग मे से नौ सौ रुपये के नोट निकाल लिए। इस स्थिति में आगे की यात्रा की व्यवस्था करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। पर इससे यह सबक मिला कि यात्रा मे पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

हरिद्वार के दर्शनो के बाद हम लोग देहरादून की ओर रवाना हुए। हरिद्वार से तीन घंटे का रास्ता था। हम देहरादून में एक जैन आश्रम मे स्थित धर्मशाला में ठहर गए।

देहरादून की औसत ऊँचाई समुद्रतल से 640 मीटर है। दून शब्द मूलत: संस्कृत शब्द द्रोण का बिगडा हुआ रूप है। हिमालय के पाद-प्रदेश और शिवालिक की पहाड़ियों के बीच पश्चिमी दून, हर की दून, पूर्वी दून, पाताल दून, आदि बहुत-सी घाटियाँ या द्रोणियाँ है। उनमे देहरादून सबसे विस्तृत, प्राकृतिक सौंदर्य में भरपूर, हरी-भरी और सबसे सुहावनी घाटी है।

इस घाटी की बाह्य सीमाएँ पश्चिम में यमुना और पूर्व में गंगा नदियाँ बनाती है। घाटी के मध्य में रिस्पना और विन्दाल नाम की बरसाती नदियाँ है, जिनमें केवल वर्षा-काल में ही पानी रहता है। घाटी की दो अन्य नदियाँ है—टोस और सोग। इनके बीच देहरादून नगर बसा हुआ है जहाँ गुरु रामराय का 'देहरा' या पवित्र स्थल है जो देहरादून नाम पड़ने का कारण है। यहाँ गुरु रामराय का गुरुद्वारा भी है।

सन् 1878 ई० में देहरादून में 'फारेस्ट रेंजर्स स्कूल' खुला। वही कालांतर मे विकसित होकर 'इंडियन फारेस्ट रेंजर्स कॉलेज' बन गया। यहाँ वन अनुसंधान संस्था विश्वविद्यालय स्तर की है और वन्य जीवन संबंधी सभी विद्याओ और काष्ठ उद्योगों पर अन्वेषण करती है। 'दून स्कूल' भी यहाँ की एक प्रमुख शिक्षा सस्था है। पर्वतारोहण के प्रशिक्षण के लिए भी एक संस्था काम करती है।

देहरादून से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित प्रेमनगर मे 'इंडियन मिलिटरी एकेडेमी' स्थापित की गई है। यही विगत द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जर्मन और इतालवी नजरबंदों के शिविर थे। युद्ध के उपरांत उन नजरबंदों के चले जाने पर, पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों को बसाने के लिए इसका उपयोग किया गया। देहरादून के निकट तिब्बती शरणार्थियों की भी एक बस्ती है। यहाँ चाय के कुछ बाग भी है। देहरादून का बासमती चावल बहुत प्रसिद्ध है।

तेल और प्राकृतिक गैस आयोग, पेट्रोलियम इंस्टीट्यूट तथा सेटेलाइट यानी भू-उपग्रह आदि केन्द्रों की स्थापना ने देहरादून नगर की महत्ता को चार चाँद लगा दिए है।

हम देहरादून से तेरह किलोमीटर की दूरी पर स्थित सहस्रधारा देखने गए। सहस्रधारा एक दर्शनीय स्थान है। वहाँ पानी की सहस्रधाराएँ फुहारे की तरह गिरती रहती हैं। घंटों मैंने फुहार का आनंद उठाया। पहाड़ के ऊपर चढ़कर उस झील को मैंने ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, जिसमें से ये सहस्रधाराएँ निकलती

हैं। पर सारा प्रयास व्यर्थ हुआ क्योंकि वहाँ कोई झील है ही नही। पानी का स्रोत खेतों की मेडो मे कही है जहाँ से वह टपकता रहता है। सहस्रधारा में एक गरम पानी का भी स्रोत है। गधकयुक्त इस गरम जल मे स्नान करने के आकर्षण से लोग दूर-दूर से यहाँ आते रहते हैं।

स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद देहरादून नगर का औद्योगीकरण हुआ है। यहाँ के बने छोटे बल्ब विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

हम देहरादून से मसूरी गए। मसूरी अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण 'पहाड़ों की रानी' नाम से प्रसिद्ध है। देहरादून से मसूरी की दूरी 35 किलो-मीटर है। यह समद्र तल से 2005.5 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। ग्रीष्म व शरद ऋतु का मौसम अत्यत सुहावना होता है। सितम्बर-अक्तूबर में यहाँ शरदोत्सव भी मनाया जाता है।

हरियाली से ढकी मसूरी की पहाड़ियाँ चित्ताकर्षक हैं। जब नागिन की तरह बल खाते टेढे-मेढ़े मसूरी मार्ग पर बस चलती है, तब वे बच्चों के खिलौनों की भाँति दिखाई देती हैं। मसूरी के आस-पास अनेक जलप्रपात हैं। इनमे 'कैम्प्टी फॉल्स' विशेष दर्शनीय है। यह 186 मीटर की ऊँचाई से फव्वारे के रूप मे गिरता है।

गनहिल पर जाने के लिए यहाँ 400 मीटर लंबा एक रज्जु-मार्ग बना है। यात्री इसमे बैठकर ऊपर जाते है और वहाँ पहुँचकर मसूरी के चारों ओर की प्राकृतिक सुषमा का आनद उठाते हैं।

अंग्रेजी राज्य के समय यहाँ दो तोपें रखी रहती थीं। इसी से इसका नाम तोप टिब्बा या गनहिल पड़ा। यहाँ से नीचे की ओर मसूरी एवं देहरादून का सुंदर दृश्य दिखाई देता है और दूसरी ओर टिहरी गढ़वाल की ऊँची-नीची पहाड़ियो का, जिनके अंक मे सीढ़ीनुमा छोटे-छोटे खेत हैं। यहाँ से हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमालाओं के दिव्य दर्शन भी होते हैं। साथ ही जहाँ तक दृष्टि जाती है, हरियाली ही हरियाली नज़र आती है और इस हरियाली के भी अनेक रूप है।

पहाड़ी पर एक सड़क है जो बैठे ऊँट के समान प्रतीत होती है। अतः उसका नाम 'केमल्स बैक रोड' पड़ा है। कपनी बाग एक सुदर पिकनिक स्थल है जहाँ नगरपालिका ने कृत्रिम ताल बना कर तैरने तथा नौकायन की सुविधा सुलभ कर दी है।

मसूरी का सबसे ऊँचा पिकनिक स्थल समुद्रतल से 2250 मीटर की ऊँचाई पर स्थित नाग टिब्बा है। यहाँ से भी मसूरी, देहरादून, टिहरी गढ़वाल व गगनचुंबी हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों के मनोहारी दृश्य दिखाई देते है। यहाँ पर टेलीविजन रिले टावर भी स्थापित किया गया है।

साँझ ढलते ही गांधी चौक, कुलडी बाजार अथवा माल रोड से देहरादून में चमकते असंख्य विद्युत दीपकों की चमचमाहट देखते ही बनती है। लगता है जैसे आकाश नीचे उतर आया हो और उसमे सहस्रो तारिकाएँ चमक रही हों।

मसूरी में ठहरने के लिए अनेक छोटे-बड़े होटल तथा सरकारी विश्राम-गृह हैं। बगले अधिकांश टीलों और चट्टानों को तोड़कर बनाए गए है। यहाँ भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के प्रशिक्षार्थियों के प्रशिक्षण के लिए 'श्री लाल-बहादुर शास्त्री प्रशासन अकादमी' स्थापित की गई है। यहाँ अखिल भारतीय सेवाओं के लिए चुने गए अधिकारियो को प्रशिक्षित किया जाता है।

मसूरी के दर्शनीय स्थलों को देखकर हम देहरादून होते हुए दो मई के सवेरे छह बजे ऋषिकेश के लिए रवाना हो गए।

ऋषिकेश

ऋषिकेश, हृषीकेश का बिगड़ा हुआ रूप है। हृषीकेश का अर्थ है इंद्रियों का स्वामी अर्थात् विष्णु या कृष्ण। विष्णु का धाम होने से इसका नाम ऋषिकेश पड़ा। यह हरिद्वार से 24 किलोमीटर दूर गंगा के दाहिने तट पर बसा हुआ है। चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ ऋषिकेश, प्रकृति की गोदी मे खेलते शिशु-सा लगता है मानो प्रकृति ने अपनी सारी छटा इस पर लुटा दी हो।

ऋषिकेश की गणना भारत के प्रमुख तीर्थों में की जाती है। यह समुद्र-तल से 336 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है और इसका क्षेत्रफल 7.52 वर्ग किलोमीटर है। ग्रीष्म और शरद ऋतु में यहाँ का मौसम अत्यत सुहावना होता है। स्नान करने के लिए यहाँ तीन घाट है—त्रिवेणी, लक्ष्मण झूला एव स्वर्गाश्रम घाट। यहाँ भी मद्य-मांस-मछली का प्रयोग निषिद्ध है। ऋषिकेश, 'चारो धाम' के लिए प्रवेश द्वार है। कहा जाता है कि श्रीरामचद्र के अनुज भरत ने यहाँ कठिन तपस्या की थी जिनकी स्मृति में यहाँ एक भरत मदिर है।

यात्रियो के ठहरने के लिए यहाँ अनेक धर्मशालाएँ है। मैं अपने परिवार के साथ 'आंध्र आश्रम' में ठहरा जो तिरुपति देवस्थानम् की ओर से संचालित है। आश्रम की बाईं ओर बालाजी का मदिर है जिसकी मूर्ति तिरुपति बालाजी की याद दिलाती है। दाईं ओर शिवजी का मंदिर है। यहाँ के पुजारी दक्षिण के है और दक्षिण भारतीय विधि से पूजा करते है। यहाँ की मूर्तियाँ सोने-चाँदी, हीरे पन्ने के बने आभूषणों से सुशोभित है।

ऋषिकेश मे स्वर्गाश्रम के निकट ही रामचन्द्र जी के अनुज शत्रुघ्न का एक छोटा-सा मंदिर है। यहाँ से छह किलोमीटर की दूरी पर लक्ष्मण का मदिर है। कहा जाता है कि लक्ष्मण ने वहाँ कठिन तपस्या की थी। मदिर से कुछ आगे बढे तो लक्ष्मण झूला मिलेगा। 40 मीटर लंबा यह झूला-पुल गंगा नदी पर सन् 1939 मे बनाया गया था। इस पुल की विशेषता यह है कि दोनों सिरों को छोड़, बीच में कहीं भी आधार प्रदान नही किया गया है। सच्चे

अर्थ में यह झूला बना हुआ है। कभी-कभी हवा के झोके या यात्रियों के भार से थोड़ा-थोड़ा हिलता भी है। इस पुल के ऊपर खच्चर सामान लेकर चलते है। काफ़ी दूरी से भी यह पुल दीख पड़ता है। इस पर चलने वाले यात्री दूर से रंग-बिरंगी चीटियों जैसे लगते है।

लक्ष्मण झूला के दूसरे सिरे पर स्थित है 'कैलास आश्रम'। असल में यह आश्रम नही वरन् 13 मंजिलो वाला एक सुंदर भवन है जो ऊँचाई के कारण कैलास पर्वत की याद दिलाता है। हर मंजिल में देव-देवियो की मूर्तियाँ स्थापित है और आखिरी मंजिल मे शंकर भगवान् की मूर्ति है। आपको ऐसा भ्रम होगा कि असल में आप कैलास पर आरूढ होकर नीचे देख रहे है। ऊपर से ऋषिकेश की सुन्दर झाँकी दिखाई देती है।

ऋषिकेश से एक किलोमीटर की दूरी पर ऋषिकुंड है। कहा जाता है कि श्री रामचन्द्र जी ने इस कुंड मे स्नान किया था। उसके पास ही रघुनाथ मंदिर है। इस कुंड मे नहाकर हमने मंदिर के दर्शन किए।

मुनि की रेती से होते हुए आप आगे बढ़ेंगे तो गंगा के बाएँ तट पर कई दिव्य भवनों के दर्शन होंगे। वहाँ जाने के लिए नाव से गंगा पार करते हैं। गंगा के तट पर गीता भवन, स्वर्गाश्रम, परमार्थ निकेतन, आनंदाश्रम आदि उल्लेखनीय हैं। इसी से कुछ आगे ऊँचाई पर महेशयोगी का योगाश्रम स्थित है। ऋषिकेश में योग तथा ध्यान का प्रशिक्षण देने वाली एक अन्य प्रसिद्ध संस्था है—योग निकेतन। ऋषिकेश में बहुत बड़ी संख्या में साधु-संत निवास करते है। अत: इसे साधु-संतों की नगरी कहे तो अत्युक्ति न होगी।

तीन मई की शाम को चार बजे बदरीनाथ की ओर जाने के लिए टिकट आरक्षित करवाने गया। पूछताछ के बाद मालूम हुआ कि केवल यातायात पर्यटन विकास सहकारी संघ वाले आज से बदरीनाथ की ओर बस चला रहे है। अन्य संस्थाओं ने बस चलाना अभी आरंभ नहीं किया है क्योंकि बदरीनाथ का मंदिर पाँच तारीख को खुलने वाला है। यात्रा के दिनो में टिकट खरीद लेने से पहले हैजे का टीका लगवाना और उसका प्रमाण-पत्र पास में रखना आवश्यक होता है। इसकी व्यवस्था करके जब मैं टिकट की खिड़की पर पहुँचा तो टिकट देने वाले ने पूछा—आपको फर्स्ट क्लास चाहिए या सैकंड क्लास? मैं कुछ समझ न पाया। किसी न किसी तरह टिकट खरीद कर बाहर आ जाना चाहता था। बोला, "दो फर्स्ट क्लास टिकट"। बाद में सोचा कि रेलगाड़ी मे तो फर्स्ट और सैकंड क्लास होते हैं, पर बस में यह कैसे? वहाँ एक कंडक्टर खड़ा था। उससे इसके संबंध में पूछा। उसने मुझे सिर से पैर तक देखा और बोला, "बस मे प्रथम छह सीटें, जो ड्राइवर के पास हैं, वे फर्स्ट

क्लास की हैं, उनके पीछे सकंड क्लास होता है।" सामने की सीटों पर बैठने से बाहर का दृश्य देखने में सुविधा होती है। यात्रा का मार्ग पहाड़ी है, अतः वहाँ छोटी बसें ही चलती है। हमे सवेरे ही उठकर यहाँ आना था। अतः बदरीनाथ जाने के लिए आवश्यक सामग्री का इतजाम रात मे ही कर लिया।

बदरीनाथ

चार मई के सवेरे चार बजे ही मेरी आँखें खुल गई। मैंने सबको जगाया, स्नान किया और सामान बाँध लिया। जिन चीजो की हमें जरूरत नही थी, उनकी एक गठरी आंध्र आश्रम के 'क्लोक रूम' में छोड़ दी। यहाँ एक गठरी के लिए एक रुपया किराया लेते है चाहे कितने ही दिन रखिए। यात्रियों को इससे बड़ी सुविधा होती है। फिर हम बस-स्टैण्ड की ओर निकल पड़े। बस हमारे इंतजार में खड़ी थी। हम चाय पीकर बस में बैठ गए। ठीक साढे पाँच बजे बस बदरीनाथ की ओर रवाना हुई। हमारी बस से स्पर्धा करती हुई और सात बसे भी एक साथ निकल पड़ी। ऐसा लग रहा था मानो रेल के आठ डिब्बे एक के बाद एक लगे हो। घूम-घूमकर चलने के कारण इस यात्रा मे कितने ही लोगों को मिचली होने लगती है। नीबू या पिपरमैंट की गोलियो से आराम मिलता है। अतः यात्री ये चीजें अपने साथ ले जाते है।

ऋषिकेश से 71 किलोमीटर चलने पर देवप्रयाग मिला। धर्मग्रथों में इसे सुदर्शन क्षेत्र भी कहा गया है। यही पर अलकनंदा और भागीरथी का संगम होता है और इसके बाद ही यह नदी 'गंगा' के पवित्र नाम से विख्यात होती है। दो पवित्र नदियो का सगम प्रयाग कहलाता है। प्राचीन ग्रथों मे प्रयाग का महत्त्व इस प्रकार बताया गया है—

"प्रयाग तुअनरोयस्तु माघस्नान करोति च।
न तस्य फलं सख्याप्ति श्रणुदेवषितत्॥"

अर्थात् हे देवर्षि! प्रयाग में जो स्नान करता है, उसके पुण्यो की गणना नही है।

देवप्रयाग एक छोटी पहाडी बस्ती है जहाँ लगभग दो सौ घर हैं। नदी के किनारे-किनारे बस का मार्ग है। देवप्रयाग इस यात्रा-मार्ग के पच प्रयागों में प्रथम है। दो नदियों के संगम पर पानी की धारा इतनी तीव्र है कि यात्री को स्नान करने मे बहुत सावधान रहना पड़ता है। यहाँ नदी पार करने के लिए एक पुराना झूले का पुल है।

यह नगर नदी की धारा से करीब तीस मीटर ऊपर एक मजबूत चट्टान पर बसा है और इसके पृष्ठ का पहाड़ सीधी दीवार की तरह खड़ा है।

यहाँ का रघुनाथ मंदिर शिल्प की दृष्टि से दर्शनीय है। मंदिर में स्थापित रघुनाथ जी की मूर्ति काले पत्थर से बनी है जिसकी ऊँचाई लगभग दो मीटर है। मंदिर के पुजारी महाराष्ट्र के भट्ट ब्राह्मण होते हैं। मंदिर के बाहर शिला पर ब्राह्मी लिपि के अनेक लेखों से बदरी-केदार की यात्रा की प्राचीनता सिद्ध होती है। यहाँ पर मंदिरों में टंगे घंटों पर भी ऐतिहासिक लेख है। मंदिर की पृष्ठभूमि में शंकराचार्य जी की गुफा है। किंवदंती है कि इस गुफा से अंदर ही अंदर गंगोत्री, यमुनोत्री, बदरीनाथ एवं केदारनाथ के लिए मार्ग बना है।

देवप्रयाग से साठ किलोमीटर आगे जाने पर गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर मिलता है। चौदहवीं शताब्दी में महाराजा जयपाल द्वारा बसाए गए इस नगर में कमलेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर है।

अलकनंदा इस घाटी में धनुषाकार होकर बहती है। कमलेश्वर महादेव के मंदिर के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि रामचंद्र जी जब रावण का वध करके उत्तराखंड के तीर्थों के दर्शन करते हुए यहाँ आए तो उन्होंने सहस्र कमलों से शिवजी की अर्चना आरंभ की। शिव ने उनकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक कमल छिपा लिया। अर्चना के समय राम ने जब एक कमल कम पाया तो वे अपना एक कमल-नयन चढ़ाने को उद्यत हो गए। उसी समय शिवजी ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया। तभी से यह मंदिर कमलेश्वर महादेव के मंदिर के नाम से विख्यात है।

यहाँ अनंत चतुर्दशी को इस क्षेत्र का सबसे बड़ा मेला लगता है। ऐसी मान्यता है कि जो महिलाएँ रात में जलता हुआ दीपक हाथ में लिए मंदिर के सामने खड़ी रहेंगी, उनकी मनोकामना पूरी हो जाएगी। प्रतिवर्ष मेले के अवसर पर अब भी इस पर्वतीय अंचल की महिलाओं को हाथों में जलते दीप लेकर पूरी रात खड़े हुए देखा जा सकता है।

श्रीनगर में गढ़वाल विश्वविद्यालय स्थित है। श्रीनगर के पास कालामठ तथा प्रसिद्ध शक्ति साधना केन्द्र चंद्रबदनी सिद्ध पीठ भी हैं।

अलकनंदा की दूसरी ओर इंद्रकील पर्वत है। कहा जाता है कि पांडवों के वनवास काल में धनुर्धर वीर अर्जुन ने यहाँ दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए तप किया था। यहीं भगवान् शिव ने किरात वेष में अर्जुन के शौर्य की परीक्षा के लिए युद्ध किया था। यह भी कहा जाता है कि संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भारवि ने यहाँ की यात्रा के बाद ही महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' की रचना की थी। यह भी प्रसिद्ध है कि ऋषि विश्वामित्र की योग-साधना को भंग करने के लिए इंद्र ने स्वर्ग की अप्सरा मेनका को यहाँ भेजा था।

श्रीनगर से लगभग 30 किलोमीटर दूर पौड़ी नगर है। यहाँ पौड़ी जिले

का मुख्यालय है। पौडी से हिमालय की बड़ी मनोरम छटा के दर्शन होते है। आप किसी भी स्थान पर खड़े हो जाइए। यदि आकाश मे बादल न हों तो नगाधिराज की एक-एक चोटी गिन सकते है। पर्यटन की दृष्टि से पौड़ी को विकसित करने की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है।

अब हम रुद्रप्रयाग की ओर रवाना हुए, जो पंचप्रयागो मे द्वितीय प्रयाग है। यह श्रीनगर से 34 किलोमीटर दूर है। अपराह्न डेढ़ बजे रुद्रप्रयाग पहुँचे। रुद्रप्रयाग का पुराना नाम पुनाड था। कहा जाता है कि यहाँ नारदजी ने भगवान् शकर की आराधना कर सगीत के मर्म को जान लिया था।

रुद्रप्रयाग मे एक बड़ा बाजार है जहाँ यात्रियो के लिए सभी चीजे मिलती हैं। हम जल्दी-जल्दी भोजन से निबट कर सगम की ओर चले। यहाँ बदरीनाथ से आने वाली अलकनंदा और केदारनाथ से निकलने वाली मदाकिनी नदियो का संगम है। रुद्रप्रयाग एक ऐसा केन्द्र है जहाँ से केदारनाथ एव बदरीनाथ के रास्ते अलग-अलग हो जाते है।

बस रवाना हुई। बत्तीस किलोमीटर आगे चलने पर कर्णप्रयाग मिला जो समुद्र तल से 788 मीटर ऊँचा है। यह पचप्रयागो मे तृतीय प्रयाग है। यह एक छोटी बस्ती है जिसकी आबादी लगभग पाँच हज़ार है। यहाँ पिंडर और अलकनंदा नदियो का संगम होता है। पिंडर का उद्गम स्थान उत्तर प्रदेश का मनोरम पिंडारी ग्लेशियर है। कुती पुत्र कर्ण ने यही तपस्या एव यज्ञ किया था। अतः इसका नाम कर्णप्रयाग पडा। किनारे पर कर्ण और उमा के छोटे-छोटे मदिर है।

यहाँ भी बस नदी के किनारे-किनारे ही चलती है। एक ओर ऊँचे पहाड़ हैं तो दूसरी ओर कल-कल करती बहती फेनिल धारा।

पहाड़ो पर चीड के बड़े-बड़े वन है। इनकी इमारती लकड़ियो को नीचे मैदान मे लाने के लिए सड़क का मार्ग खर्चीला होता है। इसलिए इन पेड़ों को काटकर नदी के प्रवाह मे उनके पट्टे बहा दिए जाते है। धारा के साथ बहकर ये शहतीर नीचे मैदान मे पहुँच जाते है। रास्ते मे हमने अनेक स्थानो पर नदी के तेज प्रवाह मे इस प्रकार के शहतीरों को बहते हुए देखा।

इस मार्ग पर जगह-जगह पहाड़ की चट्टानो पर बड़े-बड़े अक्षरो मे राष्ट्र प्रेम को जगाने वाली घोषणाएं अंकित हैं, जैसे—

"हम भारत के वीर सैनिक हैं, सर कटा सकते है पर सर झुका नहीं सकते।"

"प्राणो से भी प्यारी है मिट्टी हिन्दुस्तान की।"

"सावधान भारत के नौजवान।"

"देश के बहादुरो, मातृभूमि की लाज बचाओ।"

"भारत की रक्षा हमारी रक्षा।"

"हम मातृभूमि के सैनिक है, तन-मन-धन अर्पित है।"

"हम भारत के रखवारे है।"

"जय जवान, जय किसान।"

स्थान-स्थान पर सैनिकों का आवागमन दिखाई दिया। भारत के सीमा प्रांत के प्रारंभ होते ही सैनिको का भारी इंतजाम है। सैनिको की बावन लारियाँ एक साथ हमारे देखते-देखते गुजरी। 1962 मे चीनी आक्रमण के बाद सीमा की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

रास्ते भर इधर-उधर छोटी-छोटी बस्तियाँ दृष्टिगोचर होती है। पहाड़ी लोग भेड-बकरियाँ चराते हुए मधुर राग छेड़ते रहते है। हर कही पहाड को काट-काट कर सीढीनुमा खेत बनाए गए है। उनकी लहराती हरियाली को देखकर किसका मन मुग्ध नही होता! खेतों मे लहराते गेहूँ के पौधे सिर हिलाकर मानो हमारा स्वागत कर रहे थे। कल-कल निनाद करते पहाड़ी झरने निर्मल व मीठे पानी से अमृत की याद दिलाते थे। यहाँ के लोग बड़े परिश्रमी है। स्त्रियाँ तड़के ही उठकर चारा और ईंधन एकत्र करने में लग जाती हैं। यहाँ की खेती बहुत कुछ महिलाओ के परिश्रम पर निर्भर है। उनका नैसर्गिक सौंदर्य देखते ही बनता है। उनका रूप-रंग अप्सराओं जैसा है।

21 किलोमीटर आगे बढने पर नदप्रयाग मिला। कण्वाश्रम से लेकर नदगिरि तक जो क्षेत्र है उसे नंदप्रयाग कहते है। यह पंचप्रयागो मे चतुर्थ प्रयाग है। यहाँ पर गोपालजी तथा चडिका देवी के मदिर है।

यह रमणीक स्थान समुद्रतल से 914 मीटर की ऊँचाई पर है। पुराने कागजो मे इसका नाम कडासु है जो काडव आश्रम का अपभ्रश है। यहाँ से 9 किलोमीटर दूर अलकनदा के तट पर बैरास कुड और महादेव का मदिर है। इस स्थान पर दशानन ने तपस्या की थी, अत इस क्षेत्र का नाम दशोली पडा।

नदप्रयाग से दस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है - चमोली। चमोली जिले के मुख्यालय गोपेश्वर मे शिव मदिर है, जो केदारनाथ के पश्चात उत्तराखड के सबसे प्राचीन मदिरो मे गिना जाता है। यहाँ एक त्रिशूल पर पाली भाषा मे एक लेख अकित है जो पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

गोपेश्वर से उन्नीस किलोमीटर दूर तुगनाथ का मदिर है। यह समुद्रतल से 2072 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। उत्तराखड के सभी प्रसिद्ध मदिरों से अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण ही शायद इसे तुगनाथ (उत्तुग-

नाथ) नाम दिया गया है। यहाँ के पुजारी भी केरलीय नंबूदरी ब्राह्मण हैं। यहाँ खूब हरियाली छाई रहती है।

तुंगनाथ के निकट ही आकाशगंगा नामक स्रोत है। तुंगनाथ के शिव मंदिर के आँगन मे खड़े होकर एक ओर हिम का साम्राज्य और दूसरी ओर नीली, काली और हरी चोटियों की शृंखला देखते ही बनती है।

चमोली से 17 किलोमीटर दूर पहाड़ों के बीच पीपलकोटी नामक नगर बसा है। समुद्र तल से 1300 मीटर की ऊँचाई पर स्थित यह स्थान अत्यंत रमणीक एवं स्वास्थ्यवर्धक है। पीपलकोटी गढ़वाल मे अपने माल्टा, नारंगी, नींबू तथा अन्य नींबू प्रजातीय फलों के लिए प्रसिद्ध है।

फिर हमारी बस बिरही पहुँची। बिरही मछलियों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ मछली पकड़ने का एक केंद्र भी है। यहाँ अलकनंदा एवं बिरही नदी का संगम होता है।

रास्ते मे हमने देखा कि भोटिया लोग भेड़-बकरियों पर नमक लादे जा रहे थे। उत्तर प्रदेश के उत्तर में अवस्थित जिला पिथौरागढ़ के उत्तरी भू-भाग को भोट कहते है। यहाँ के निवासी भोटिया कहलाते है। इनका पुराना नाम शौका है। यह जाति परंपरागत रूप से भेड़-पालन तथा ऊन-उद्योग पर जीवित है। ये सौम्य प्रकृति के होते है। ये भोटिया बोली बोलते है। उनके रहन-सहन और रीति-रिवाजों मे कुछ अंश तक तिब्बती प्रभाव परिलक्षित होता है।

भोटिया लोग मध्यम कद के होते हैं। उनके गालों की हड्डियाँ उभरी होती है और आँखे छोटी होती है। ये एक जगह से दूसरी जगह पर पड़ाव डालते रहते है।

इनके सबसे बड़े मददगार होते हैं कुत्ते। इनके गले मे लोहे की कीलें लगा हुआ पट्टा पड़ा रहता है। इसी से वे भेड़िया और भालू जैसे खूँखार जानवरों से भी टक्कर ले लेते है। ये कुत्ते दिन मे तो शांत और चुपचाप रहते है पर रात में खूँखार बन जाते है।

मोटर-मार्ग बनने से पहले जब लोग पैदल यात्रा करते थे, तब पैदल चलने वालों के लिए जगह-जगह पर आराम करने या रात मे ठहरने के लिए पड़ाव बने थे, जिनको चट्टी कहते है। हर 5-7 किलोमीटर पर ऐसी चट्टियाँ बनी हुई थी। चट्टियों मे कही पक्के मकान थे तो कही कच्चे। पैदल यात्रा कम हो जाने के कारण इनकी संख्या बहुत कम हो गई है। यहाँ खाने की सब चीजे— दूध, दही, मेवा, पेड़ा आदि मिल जाती है, पर यात्रा मार्ग होने के कारण सब महँगी मिलती है। यहाँ यात्रियो को किराए पर बिछौना एवं रजाइयाँ मिल जाती है। कालीकमली वाले बाबा की धर्मशालाएँ यात्रियों को ठहरने के लिए मुफ्त मे मिल जाती है।
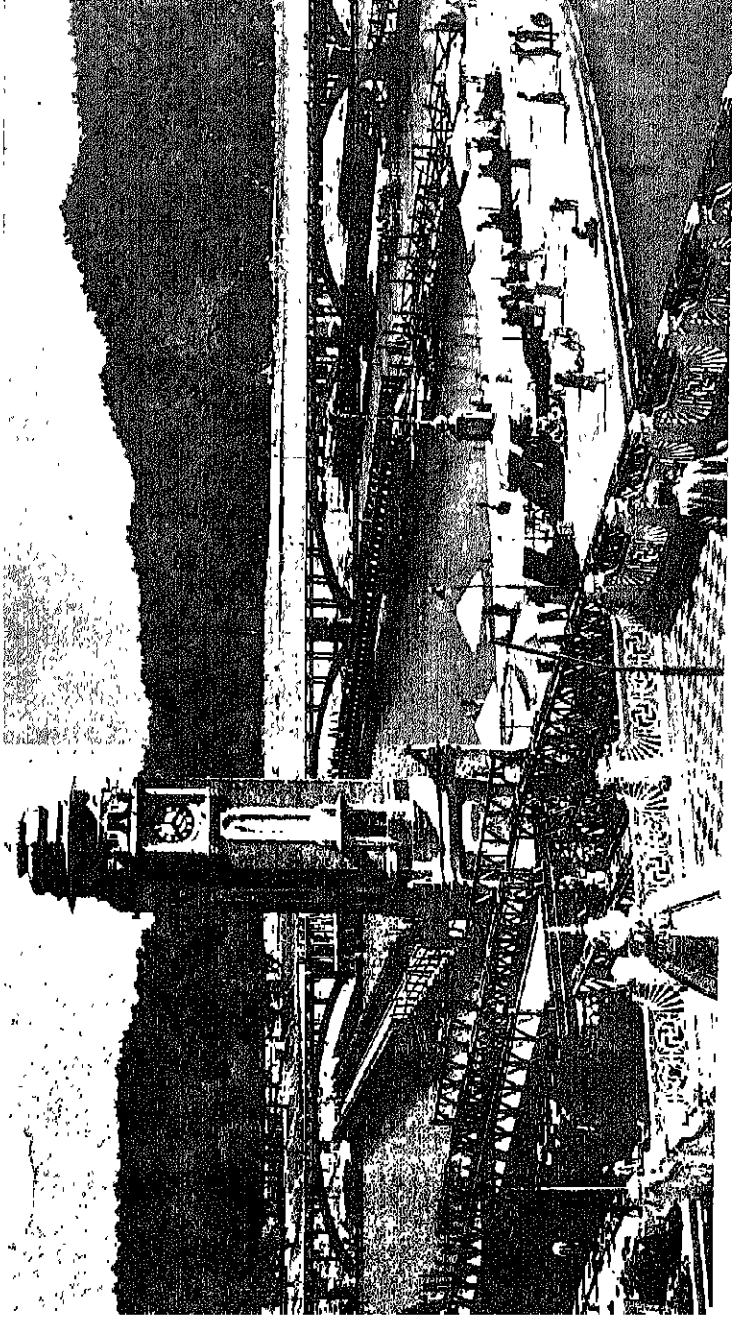
हरिद्वार में 'हरि की पैड़ी' नामक स्नानघाट के सामने बना घंटाघर और चबूतरा।

हरिद्वार में गंगा नहर का एक दृश्य। इस नहर से उत्तर प्रदेश के एक विशाल भू-भाग की सिंचाई होती है।
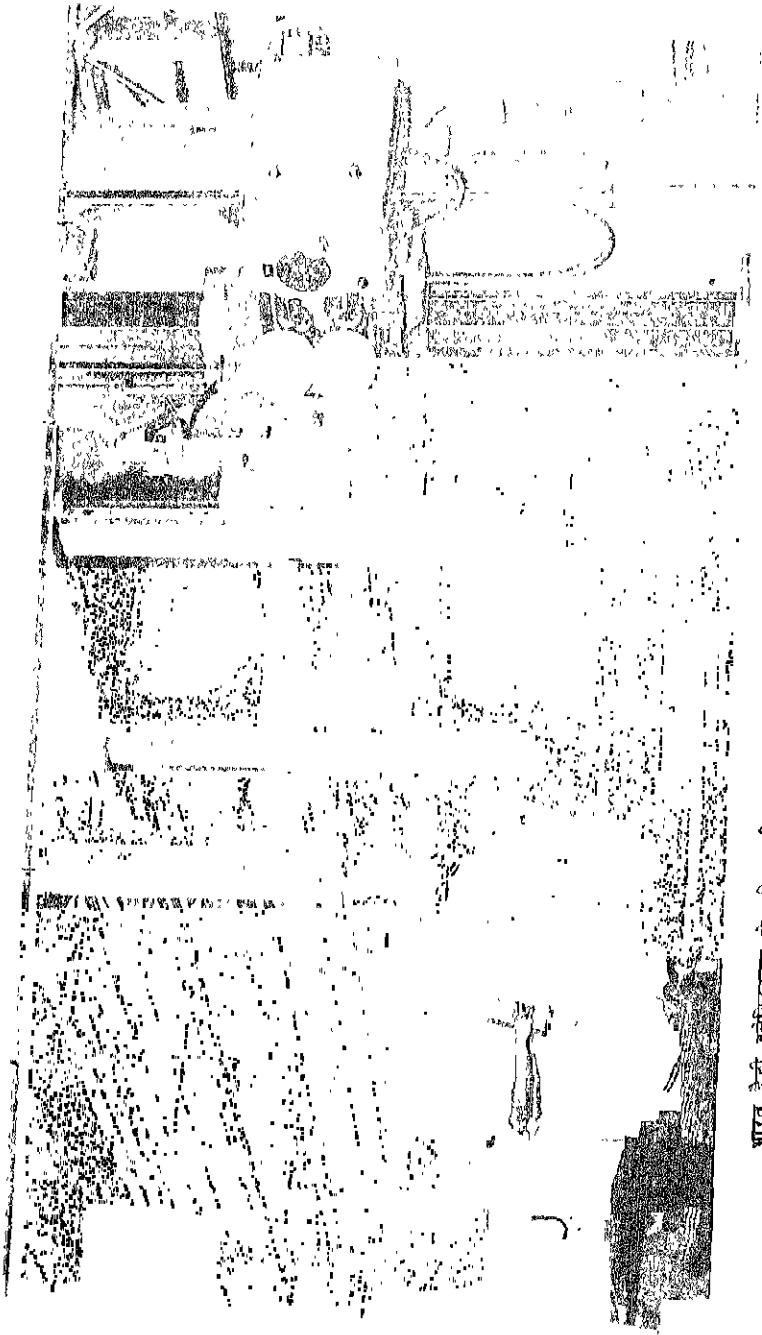
भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स के हरिद्वार स्थित सरकारी कारखाने का एक दृश्य। इसमें विद्युत उत्पादन के विशाल उपकरण तैयार किए जाते हैं।
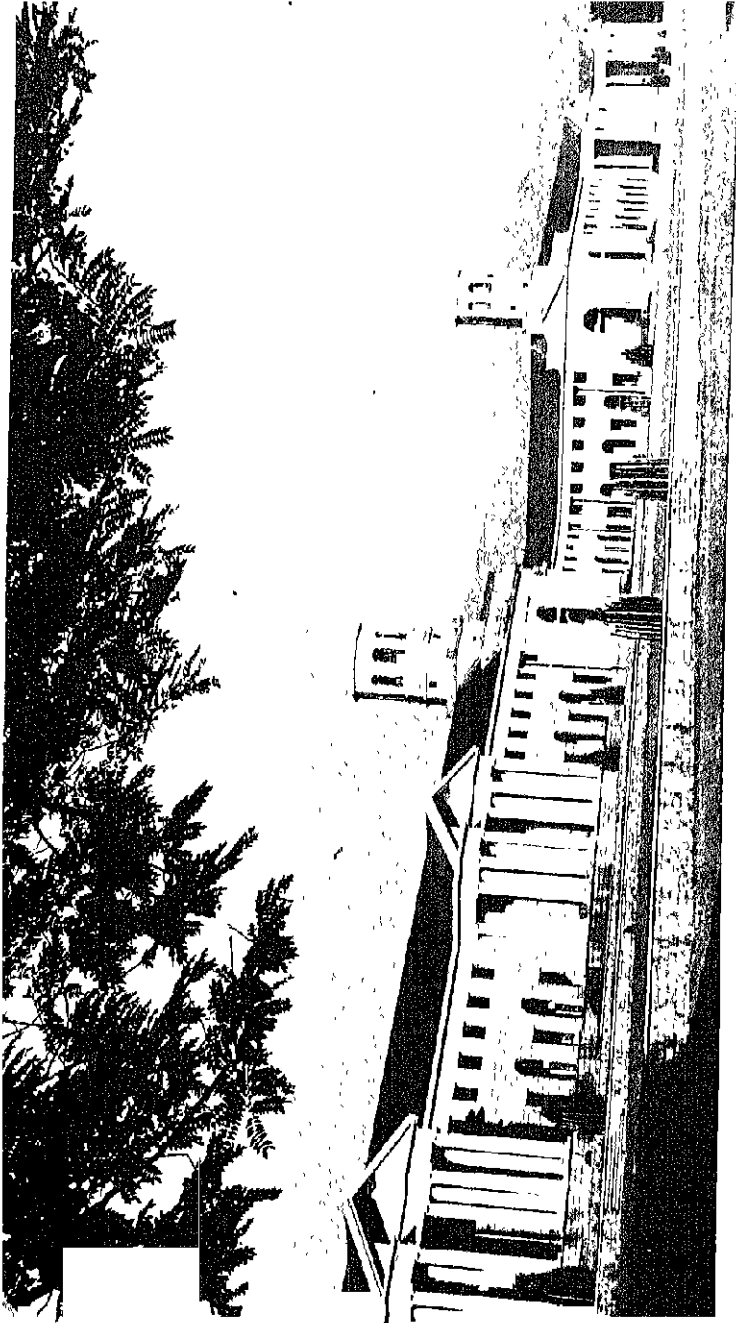
देहरादून के वन अनुसंधान केन्द्र का भवन।

यात्रा-मार्ग के पंच प्रयागों में प्रथम—देव प्रयाग।
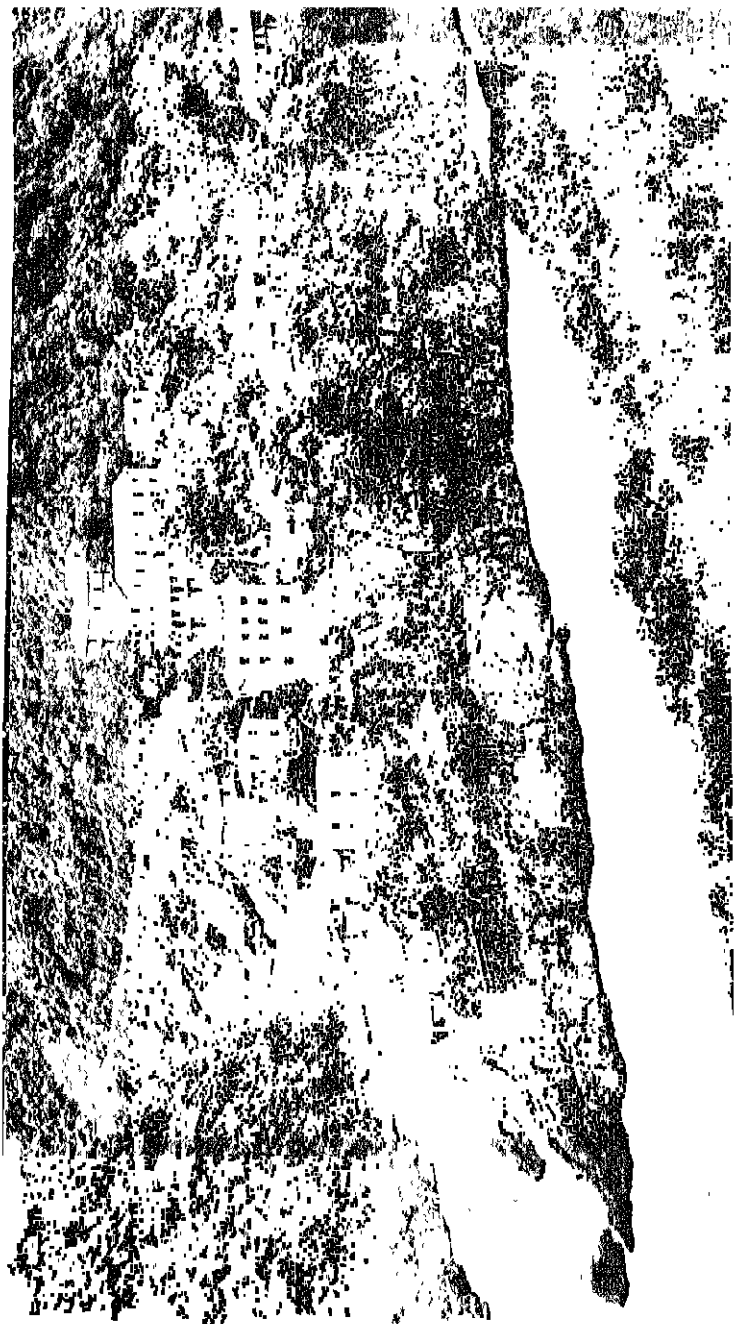
अलकनंदा और मंदाकिनी नदियों के संगम पर बसा रुद्र प्रयाग।

जोशीमठ का एक दृश्य। आदि शंकराचार्य ने इसी स्थल पर तपस्या की थी।
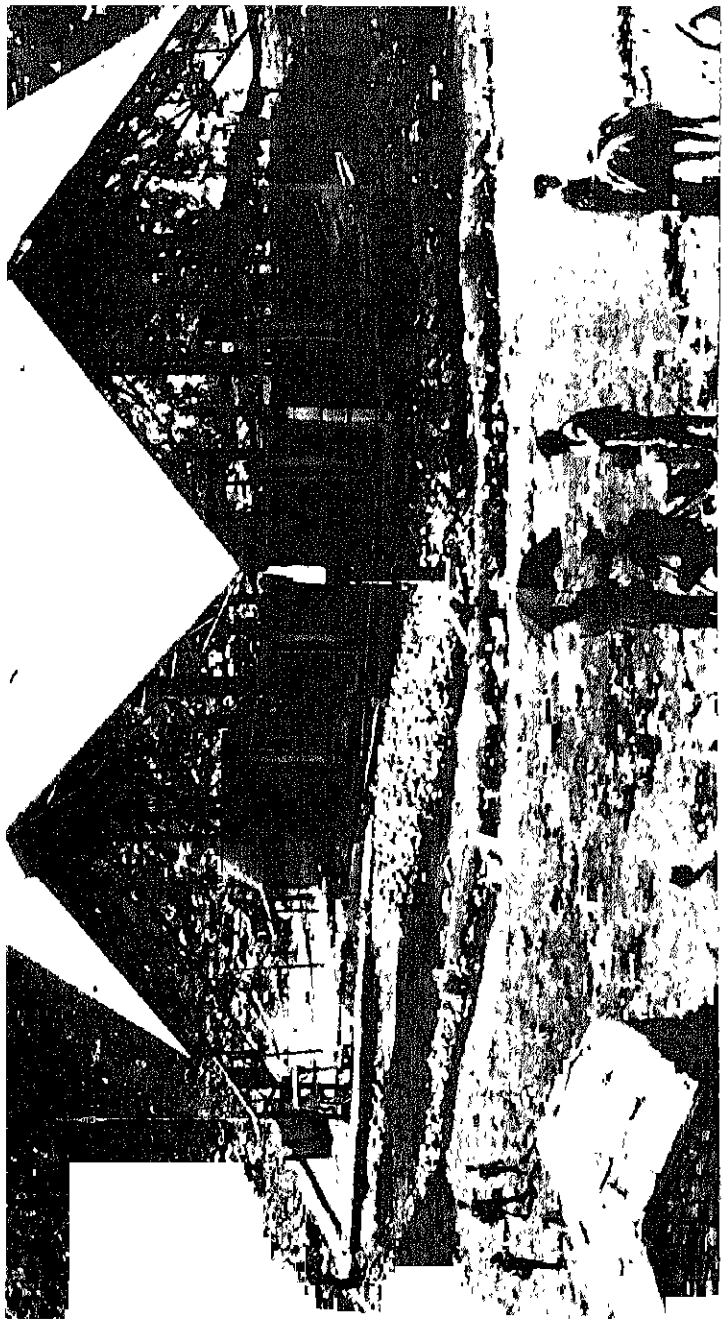
हेमकुंड लोकपाल का गुरुद्वारा। यह सिखों का पवित्र तीर्थ स्थान है।

पीपलकोटी से आगे बढने पर गरुड़गगा और अलकनदा का संगम है जिसके किनारे गरुड़ का एक छोटा मदिर है। आस्तिक लोग यहाँ नहा-धोकर यहाँ के पत्थर के टुकडो को घर ले जाते हैं। उनका विश्वास है कि घर मे इन पत्थरों के टुकड़ो की पूजा करने से साँप का डर नही रहता। यहीं से पाताल गंगा की चढाई शुरू होती है। अपने नाम को सार्थक करते हुए यह पाताल की याद दिलाती है। यदि नीचे देखते है तो हृदय धक-धक करने लगता है। सैकड़ों मीटर नीचे मटमैले पानी की धारा बड़ी तेज़ी से बहती है। दो-तीन किलोमीटर तक यह भयानक रास्ता चलता है। अतः बस चालक को बहुत सावधान रहना पड़ता है।

उसके आगे गुलाबकोटी है। कहा जाता है कि सतयुग में पार्वती ने यहाँ तप किया था। शिवजी से विवाह करने की इच्छा से उन्होने वर्षों तक पत्ते खाकर तपस्या की। इसी कारण पार्वती का एक नाम 'अपर्णा' भी है।

शाम को साढ़े चार बजे हम जोशीमठ पहुँचे। इसे ज्योतिर्मठ भी कहते हैं। यह स्थान पीपलकोटी से 34 किलोमीटर दूर है और यह समुद्र तल से 1,890 मीटर ऊँचा है। यहाँ जगद्गुरु शंकराचार्य का मंदिर और मठ है। यहाँ श्री बदरीनारायण की एक गद्दी भी है। आदि शकराचार्य ने यहाँ कठिन तपस्या की थी। उन्होने अद्वैत मत का प्रतिपादन किया और पूरब में जगन्नाथपुरी, पश्चिम मे द्वारिका, उत्तर मे जोशीमठ तथा दक्षिण में श्रृंगेरी, इन चार मठों की स्थापना की थी। इन मठो के गुरु आज भी शंकराचार्य ही कहलाते है। जोशीमठ में आदि शकराचार्य ने ही बदरीनारायण की गद्दी बनवाई थी। यहाँ एक शहतूत (कीमू) का पेड़ है जिसके नीचे बैठकर शकराचार्य ने कई शास्त्र रचे थे। यहाँ एक नरसिंह मदिर है जिसकी मूर्ति काले पत्थर की बनी है। उस मूर्ति का बायाँ हाथ बड़ा पतला है। पुजारी का कथन है कि यह दिन-ब-दिन पतला होता जा रहा है। जब यह पूर्ण रूप से गलकर गिर जाएगा तब खंड प्रलय होगी। बदरीनाथ के सब रास्ते टूट जाएँगे और कोई वहाँ पहुँच न पाएगा।

नरसिंह मंदिर के बाहर द्रौपदी और गरुड़ की मूर्तियाँ हैं। नव दुर्गा आदि की मूर्तियों पर लोग घी चढाकर पूजा करते है। मंदिर के बगल में एक कुंड है जिसमें नरसिंह एवं दंड नामक दो जल धाराएँ आकर गिरती हैं।

सर्दी के मौसम मे जब बदरीनाथ के पट छह महीने के लिए बंद हो जाते हैं तब यही बदरीनाथ की पूजा होती है। उस समय बदरीनाथ की चल मूर्ति के साथ पुजारी नबूदरीपाद भी यहीं आकर रहते है। मंदिर के पट खुलने पर चल मूर्ति को साथ ले वे वापस चले जाते है।

उत्तरी सीमा की सुरक्षा के लिए जोशीमठ में एक सैनिक छावनी भी स्थापित की गई है।

जोशीमठ से आगे छह किलोमीटर की उतराई ही उतराई है। उतरते समय ऐसा लगता है कि मानो हमारा हृदय भी बैठा जा रहा हो। जोशीमठ से 'गेट सिस्टम' शुरू होता है। रास्ता तंग होने के कारण एक समय में एक ओर की बसों को जाने दिया जाता है। ऋषिकेश से जो आठ बसें चली थीं, उनमें केवल दो ही ठीक समय पर आ पाईं। गेट खुला था। हम बदरीनाथ की ओर चल पड़े। तुरंत गेट बंद हो गया। बाद में आने वाली छहों बसों को रात में यहीं पड़ाव डालना पड़ा। दूसरे दिन आठ बजे के बाद गेट खुलने पर वे बसें आगे बढ़ पाईं।

हमारी बस धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। हिमालय की शोभा का अवलोकन करते हुए, हम भविष्य बदरी आ गए। यहाँ अलकनंदा और धौली गंगा का संगम होता है। यह स्थान विष्णुप्रयाग नाम से प्रसिद्ध है जो पंचप्रयागों में अंतिम है। यह 1625 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। अति दुर्गम स्थान होने के कारण विष्णुप्रयाग में कोई बस्ती नहीं है। प्रयागों में सबसे अधिक वेगवती धाराएँ यहीं पर मिलती हैं जिनके दर्शन से श्रद्धा और भय दोनों का संचार होता है।

विष्णुप्रयाग से हम गोविन्द घाट पहुँचे। यहाँ पर मंदिरों के साथ-साथ एक गुरुद्वारा भी है। गोविंद घाट से दो मार्ग हैं। मोटर मार्ग बदरीनाथ की ओर जाता है और दूसरा पैदल मार्ग संसार प्रसिद्ध 'फूलों की घाटी' और हेमकुंड लोकपाल की ओर।

गढ़वाल मंडल में अनेक ऐसी फूल घाटियाँ हैं जिनका सौन्दर्य संसार में अद्वितीय है। उनमें मुख्य हैं—भ्यूंडर की फूल घाटी, रुद्र हिमालय की फूल घाटी, हर की दून की फूल घाटी, माँझी वन की फूल घाटी, सुक्खी और धराली की फूल घाटियाँ, कुशकल्याण और सहस्रताल की फूल घाटियाँ, बयार्की बग्याल की फूल घाटियाँ आदि। कुछ घाटियाँ ऐसी हैं जहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन है।

भ्यूंडर की फूल घाटी ही 'फूलों की घाटी' के नाम से विख्यात है। इसका वर्णन सबसे पहले प्रसिद्ध पर्यटक फ्रैंक स्मिथ ने 'वैली ऑफ फ्लावर्स' नामक अपनी पुस्तक में किया। यह पुस्तक 1931 में प्रकाशित हुई। उसे पढ़कर विश्व के अनेक पर्यटक, वनस्पति विशेषज्ञ तथा प्रकृति प्रेमी इस क्षेत्र में आने लगे। 'कामेट एक्सपेडिशन' वालों ने एक हजार फूलों के लिए नाम दिए हैं।

गोविन्द घाट से अलकनंदा का पुल पार कर पतली पहाड़ी पगडंडी से भ्यूंडर नदी के किनारे-किनारे चलकर दस किलोमीटर की दूरी पर भ्यूंडर गाँव है। भ्यूंडर गाँव से 5 किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई के बाद घघरिया नामक स्थान आता है। घघरिया में वन विभाग का डाक बंगला है। पर्यटक प्रायः घघरिया में डेरा डालकर सवेरे फूलों की घाटी में भ्रमण के लिए निकल जाते

हैं और तीसरे पहर लौट आते है। सामान्यत: तीसरे पहर के बाद वर्षा होने लगती है।

घघरिया डाकबंगले से करीब आधा मील भ्यूंडर नदी (जो लक्ष्मण गगा के नाम से प्रसिद्ध है) के साथ-साथ जाने पर उत्तर की तरफ हेमकुड लोकपाल के लिए मार्ग मुड जाता है। हेमकुड मे एक गुरुद्वारा है। कहा जाता है कि सिक्खों के दसवे गुरु गोविन्द सिह ने पूर्व जन्म मे यहीं कठिन तपस्या की थी। यहाँ एक ताल और लक्ष्मण का पुराना छोटा मंदिर है, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है।

फूलो की घाटी का मार्ग नदी के साथ-साथ पूर्व दिशा को जाता है। घघरिया से लगभग चार किलोमीटर जाने पर बामणीघाट नामक स्थान आता है जो कि अत्यंत संकरा है। यह फूलो की घाटी का प्रवेश द्वार है। इसे पार करते ही विश्व विख्यात फूलो की घाटी के दर्शन होने लगते है।

फूलो की घाटी लगभग 15 किलोमीटर तक फैली हुई है। यहाँ मखमली हरी दूब और हजारो प्रकार के रंग-बिरंगे फूल मन को मोह लेते है। घाटी में प्रवेश करने के बाद जैसे-जैसे आगे बढते जाते हैं, इसका ढाल कम होता जाता है और फैलाव विस्तार पाता जाता है। यह घाटी 3,352 मीटर से 3,658 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। कामेट पर्वत शृखला का दृश्य भी इस घाटी का प्रमुख आकर्षण है।

इस घाटी मे जुलाई के अतिम सप्ताह से सितम्बर के प्रथम सप्ताह तक फूल खिले मिलते है। अगस्त मे सपूर्ण घाटी फूलो से सजी रहती है। अक्तूबर मे बर्फ़ की पहली ठडी हवा के साथ फूल मुरझाने लगते हैं और धीरे-धीरे बर्फ़ की मोटी चादर इनके ऊपर चढती जाती है।

गोविन्द घाट से लगभग 3 किलोमीटर आगे पांडुकेश्वर है। कहा जाता है कि इसे पांडवों के पिता पांडु ने बसाया था। महाराज पांडु यही रहते थे। पाडव भी यही पैदा हुए। शिवजी से धनुष लेने के लिए अर्जुन इसी मार्ग से तपस्या करने हिमालय पहुँचे। द्रौपदी के माँगने पर सौगधिका पुष्प लाने के लिए भीम भी इसी मार्ग से गए। महाभारत के युद्ध के उपरांत पांडवों ने इसी मार्ग से स्वर्गारोहण किया था। पाडुकेश्वर से लगभग ग्यारह किलोमीटर आगे चलने पर हनुमान चट्टी मिलती है। यहाँ हनुमान का एक मंदिर है। कहा जाता है कि हनुमान से भीम यही मिले थे। हमने हनुमान-मंदिर मे दर्शन किए। इसके बाद ही हमारी बस 'देवदर्शिनी' नामक स्थान पर पहुँच गई। यहाँ से बदरीनाथ पुरी के दर्शन होने लगते हैं। लोग यहाँ पहुँचते ही "जय बदरी विशाल की" की जय-जयकार कर उठे। उस जय-जयकार से आकाश गूंज गया और हम गदगद हो यात्रा के सारे कष्टों को भूल गए।

अब तक हम 'बसस्टाप' पहुँच चुके थे। कड़ाके की सर्दी जोशीमठ से ही पडने लगी थी। अत अपना बोरिया-बिस्तर नीचे उतार कर हमने गरम कपड़े पहन लिए। एक कुली को बुलाकर बाजाली आश्रम ले चलने को कहा। वह आश्रम यहाँ से पौने तीन सौ मीटर की दूरी पर था। वहाँ के स्वामी जी ने सहर्ष हमारा स्वागत किया और ठहरने के लिए हमे एक कमरा दिया। अब तक साढ़े छह बज चुके थे। ठड के कारण बाहर घूमने जाने का साहस नही हुआ। साथ ही बादलो के छा जाने से बाहर अँधेरा हो गया था। थोड़ी देर मे वर्षा भी होने लगी।

उस कमरे मे और भी दो लोग थे। साँवले रंग वाले हट्टे-कट्टे साठ-पैंसठ की उम्र के एक बुजुर्ग थे। उनकी पत्नी की उम्र लगभग पैंतालीस होगी। वे भी सोने के लिए बिस्तर बिछा रहे थे। स्टोव पर कुछ पक रहा था। गरम मसाले की सुगंध कमरे भर मे फैल रही थी, जिससे हमारे मुँह मे पानी आ रहा था। हम विवश थे। मैंने अपनी पत्नी से धीरे से कहा, "यदि हमें भी यह भोजन मिल जाता तो कितना अच्छा होता!" वह बोली, "तुम बेशरम हो। चुप रहो।"

इतने मे उस महिला ने मेरी पत्नी से इशारे से पूछा, "क्या आपने कुछ खाया?" मेरी पत्नी ने भी इशारे से बताया कि अभी-अभी आए हैं। अभी पकाने का इरादा नही है। साथ मे पाव रोटी ले आए है, उसे अचार के साथ खा लेंगे। इन दोनों के हाव-भाव देख मुझे हँसी आ गई। इतने मे दो थालियों मे भात परोस कर वे बुजुर्ग मेरे सामने लाए और बोले, "खाओ साब।" मैं बोला, "आप खा लीजिए। हम बाद मे खाएँगे।" शायद उन्होने सोचा हो कि हम उन्हें निम्न जाति का समझकर नही खा रहे है। बोले, "हम अच्छी जाति के है। खाइए।"

मुझे हँसी आ गई। बोला, "हम जात-पाँत का भेद नहीं रखते। हमें अभी भूख नही है।" पर मेरी अंतरात्मा बोली, "तुम कितने झूठे हो! यह दिखावा क्यों?"

मैने उनसे पूछा, "आप कहाँ से आए है?"

"कर्नाटक से।"

यह सुनते ही मैं बिस्तर से उछलकर उठ बैठा। संकोच का आवरण हट गया। अपनों से कौन-सा दुराव-छिपाव? दोनो एक ही कर्नाटक प्रदेश से आए है। मैंने उनसे कन्नड़ में पूछा, "कर्नाटक मे कहाँ रहते है?"

"मैसूर शहर में।"

"हम भी मैसूर शहर से आए हैं।"

"तो आप खा लीजिए न।"

"बहुत धन्यवाद। अभी खा लूँगा।" मैं खाने मे जुट गया। मेरी पत्नी की खुशी का ठिकाना न रहा। औरतो को कोई बोलने बतियाने वाला न मिले तो शायद उनका जीवन ही फीका हो जाए। आठ-दस दिन से उसकी बोली बद थी; क्योकि वह केवल मुझसे ही बात कर पाती थी। वह न तो हिन्दी जानती है और न अग्रेजी। टूटी-फूटी हिन्दी मे औरों के साथ मेरे सामने बोलने मे शरमाती है। ऐसी अवस्था में जब अपनी बोली जानने वाला ढाई हजार किलोमीटर पार करके भी मिल गया है तो उस खुशी का वर्णन किन शब्दों मे किया जाए।

यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बदरीनाथ से आकर्षित होकर सुदूर दक्षिण से पहले पहल अखंड ज्योति के दर्शन की लालसा लिए आने वालों में पहला व्यक्ति मै नहीं हूँ। पहले से ही ये बुजुर्ग पापय्या जी अपनी पत्नी राजम्मा के साथ आए हैं। इस अखंड ज्योति ने सबको एक सूत्र मे बाँध रखा है। भारत की अखडता का साक्षात दर्शन हुआ।

बातचीत से मालूम हुआ कि वे केवल बदरीनाथ के दर्शन कर लौटने वाले है। मेरे यह कहने पर कि हम केदारनाथ, यमुनोत्री और गगोत्री (गोमुख) भी जाने वाले है, उन्होने कहा, "आपको एतराज न हो तो हम भी साथ चलेंगे। ले चलिए। आप जैसे हिन्दी जानने वाले साथी से हमे बड़ी सुविधा होगी। खासकर मेरी पत्नी राजम्मा बहुत ऊब गई है। तीन महीने से उसके मुँह पर ताला पड़ा हुआ है। यह कन्नड़ के सिवा और कोई भाषा नहीं जानती। मैं तो किसी-न-किसी तरह टूटी-फूटी हिंदी में काम चला लेता हूँ। यह जल्दी गाँव लौटना चाहती है।" मैं बोला, "अब तो बाते करने के लिए मेरी पत्नी है। चिंता न कीजिए।" तब तक दोनो महिलाएँ बाते करने मे तल्लीन हो गई थीं। दोनों अपने-अपने अनुभव की बातें बता रही थीं। राजम्मा ने बताया कि आज सवेरे दो घंटे पकाने पर भी दाल नही पकी। आखिर थककर सूजी का उप्पमा बनाया था। गरम-गरम उप्पमा मुँह तक जाते-जाते ठंडा पड़ जाता था। वहाँ के स्वामी जी ने बताया कि ठडे के कारण ही दाल जल्दी नही पकती है। स्वामी जी ने यह भी कहा कि देर तक स्टोव न जलाइए। यहाँ ऑक्सीजन की कमी है। स्टोव के जलने से ऑक्सीजन कम हो जाती है। साँस लेना कठिन हो जाता है। दम घुटने लगता है। कभी-कभी लोग दम घुटने से मर भी जाते हैं। अतः खिड़की खुली रहने दीजिए।

आज (5 मई को) साढे आठ बजे मंदिर के पट खुलने वाले थे। भीतर छह महीने से जलने वाली अखंड ज्योति के दर्शन आज होने वाले थे। अतः अखंड ज्योति के दर्शनों की लालसा लिए हम सपरिवार स्नान करने के लिए

तप्त कुंड की ओर चल पड़े। तप्त कुंड मंदिर के सामने पड़ता है। स्त्री और पुरुषों के नहाने के लिए अलग-अलग कुंड है। जहाँ स्त्रियाँ नहाती है, वहाँ पानी उतना गरम नही है, जितना पुरुषों के नहाने के कुंड में है। इनमें चौबीसों घंटे गरम पानी आता रहता है। यहाँ साबुन आदि लगाकर नहाना वर्जित है। कुंड मे प्रवेश करने पर लगता है कि मानो शरीर जल जाएगा, पर धीरे-धीरे उसका ताप सह्य हो जाता है। इतने तप्त जल में सिर देर तक नही डुबाना चाहिए, क्योंकि उससे चक्कर आने लगता है। इस पानी मे गंधक मिला हुआ है अतः इससे चर्म रोग दूर हो जाते है। इसका पानी पीना नही चाहिए क्योकि गंधक मिला होने से स्नायु रोग पैदा हो जाता है। इस तप्त कुंड के नीचे ही अलकनंदा का इतना शीतल जल बहता रहता है कि उसमे हाथ डालते ही उँगलियाँ ठंड के मारे अकड़ जाती हैं। प्रकृति की यह कैसी विचित्र लीला है।

तप्त कुंड से निकलकर हम मंदिर के सिंह द्वार पर आ गए। सामने हिम धवल चोटियों के दर्शन हुए। ठंड के कारण हाथ-पाँव ठिठुर रहे थे और दाँत किटकिटाने लगे थे। ठीक साढे सात बजे हिम की चोटियो से सूर्य भगवान् झाँकने लगे। हिममंडित शिखरों पर पड़ रही सूर्य की सुनहली किरणे अपूर्व दृश्य उपस्थित कर रही थी। हम सब सूर्य भगवान् की वंदना करने लगे।

बदरीनाथ का गुणगान महाभारत तथा अनेक पुराणो मे, विशेषतः स्कंद और पद्मपुराण में किया गया है। इसे देवताओं की अमर भूमि कहा गया है।

गायंति देवाः किलगीतकानि। धन्यास्तुते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गाश्रितमार्गभूते। भवंति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(देवता भी भारत भूमि का मधुर गुणगान करते हैं। धन्य है वह भारत भूमि जिसमे देवता गण अपने देवत्व को त्याग और स्वर्ग से उतर भारत भूमि में मनुष्य योनि मे जन्म लेकर अपने को धन्य समझते है)

बदरीनाथ की यात्रा तभी सफल मानी जाती है जब पंचबदरी के दर्शन हो जाते है। पंचबदरी ये है—

1. विशाल बदरी (जिनकी सीढ़ियों पर हम खड़े थे)
2. आदि बदरी (कर्ण प्रयाग से लगभग 18 कि० मी० दूर)
3. भविष्य बदरी (जोशीमठ के पास)
4. ध्यान बदरी (कुम्हार चट्टी के नीचे)
5. योग बदरी (पांडुकेश्वर में)

पुराणों में कहा गया है कि ब्रह्मा के कई बेटे थे। एक का नाम दक्ष था। दक्ष की सोलह पुत्रियाँ थी। उनमें तेरह का विवाह धर्मराज से हुआ। उनमे

से श्री मूर्ति अत्यंत शीलवती एवं पतिव्रता थी। श्री मूर्ति के दो बेटे थे। छोटे का नाम नर और बड़े का नाम नारायण था। दोनों भाई एक दूसरे से बड़ा प्यार करते थे। उनका प्यार देखकर लोग उन्हें नर-नारायण कहकर पुकारते थे। दोनों ने माता की बड़ी सेवा की। माँ ने खुश होकर कहा, "बेटे, अपने मनोवांछित वर माँगो। मैं देने के लिए तैयार हूँ।" अच्छा अवसर पाकर दोनों एक साथ बोल पड़े, "हम दोनों वन मे जाकर तपस्या करना चाहते है। आप हमे जाने की अनुमति दे दीजिए।"

माता के हृदय पर जैसे वज्र गिरा। अपने प्रिय पुत्रो से बिछुड़कर कैसे रह सकती थी ? पर साथ ही मनोवांछित वर देने का वचन दे चुकी थी। विवश हो उन्होंने भारी मन से उन्हें विदा किया। ये दोनों भाई वन-वन घूमते हुए हिमालय के इस वन प्रदेश मे आए। यहाँ बदरी (बेर) पेड़ो का सघन वन था। अतः इसका नाम बदरी वन पड़ गया था। कंदमूल फल तथा जड़ी-बूटियाँ यहाँ विपुल मात्रा मे मिलती थी। तपस्वियो को और क्या चाहिए। अलकनंदा के दोनो किनारो पर दो पहाड़ थे। दाहिनी ओर वाले पहाड़ पर नारायण तप करने लगे और बाईं ओर वाले पहाड़ पर नर। अतः उन पहाड़ों के नाम भी नर पर्वत और नारायण पर्वत पड़ गए।

उनकी कठोर तपस्या से इंद्र डर गया। उनका तप भंग करने के लिए उसने चार अप्सराओ को भेजा। अप्सराएँ अपने साथ कामदेव एवं ऋतुराज वसंत को ले आईं। उन्होंने नर-नारायण को मोहित करने के लिए अनेक प्रयत्न किए। पर नर-नारायण इससे प्रभावित न हुए। तप से वे नही डिगे।

जब नारायण की आँखे खुली तो उनसे तेज निकल रहा था। सब लोग डर गए और थर-थर काँपने लगे। उन्हे देखकर नारायण को दया आ गई। वे बोले, "आप लोग हमारे अतिथि है, भयभीत न हों। जाते समय इन्द्र के लिए मेरी ओर से एक भेंट लेते जाएँ।"

सब लोग भय से मुक्त हुए और बोले, "हम अभी जाना चाहते है। आज्ञा दीजिए।"

मुनिवर ने आम की एक डाली निकाली और अपनी जाँघ से रगड़कर मथने लगे। ऐसा करते ही कई अप्सराएँ पैदा हुईं। उनमे से अनन्य सुन्दरी उर्वशी को उन्होंने इंद्र के लिए भेंट के रूप मे दे दिया। बदरी वन में आज भी 'उर्वशी कुंड' है जो इस कथा की याद दिलाता है। इंद्र उर्वशी का सौन्दर्य देखकर अपनी करतूत पर लज्जित हुआ। उसने अनुभव किया कि ये मुनि साधारण नहीं, स्वयं भगवान् के अवतार हैं। उसने उनसे क्षमा माँगी और उनकी वंदना की।

ये दोनों मुनि कलियुग के आने तक इसी जगह पर तपस्या करते रहे।

कहते हैं कि कालांतर में इन दोनों ने कृष्ण और अर्जुन के रूप में जन्म लिया। नया जन्म लेने के पूर्व उन्होंने ऋषि-मुनियों को बुलाकर कहा, "यहाँ से हम जा रहे हैं। नारदशिला के नीचे हमारी एक मूर्ति है, उसे निकालकर उसकी पूजा कीजिए।"

ऋषि मुनियों ने मूर्ति निकाली और मंदिर बनाकर उसमें उस मूर्ति की प्रतिष्ठा की। यह मूर्ति स्वयंभू है। इसी मूर्ति के दर्शन करने हम आज सवेरे से खड़े थे।

अब साढ़े आठ बज चुके थे। पूर्ण कुंभ लिए, वेद घोषों के साथ स्वामी जी और पुजारी रावल मंदिर का पट खोलने आए। सिंह द्वार खुला। हम मंदिर के प्रांगण में पहुँचे और घोष के बीच गर्भ-गृह की ओर बढ़े। भीड़ अधिक न थी, क्योंकि अब तक केवल दो ही बसें बदरी आ पाई थीं। गर्भ-गृह के बाहर चारों ओर गरुड़, हनुमान, लक्ष्मी और घंटाकर्ण की मूर्तियाँ हैं। गर्भ-गृह का द्वार खुला। अखंड ज्योति जल रही थी जिसे नंदा दीप कहते हैं। ज्योति के प्रथम दर्शन हुए। बदरीनारायण की मूर्ति श्यामल है, पद्मासन लगाए तप करते नजर आते हैं। उन्हें रेशम और मखमल के कपड़े पहनाए गए थे। हीरे और मोतियों के अमूल्य गहने जगमगा रहे थे। ललाट में हीरा लगा हुआ था। दाहिनी ओर कुबेर और गणेश जी की तथा बाईं ओर नर-नारायण, उद्धव, नारद और लक्ष्मी की मूर्तियाँ थीं। मंदिर में चार बार धूमधाम से पूजा और आरती होती है।

यहाँ प्रसाद के रूप में चने की कच्ची दाल और फूल की माला आदि चढ़ती है। हम भी पूजा की सामग्री साथ में ले गए थे। पूजा और आरती के बाद नई अखंड ज्योति गर्भ-गृह में स्थापित की गई और पुजारी छह मास से जल रही ज्योति को बाहर लाए। वह प्याले के आकार का चाँदी का एक बड़ा बर्तन होता है। उसमें घी भर देते हैं और तिल की एक पोटली बाती के रूप में रख देते हैं। दक्षिण भारत में नव ग्रहों की शांति के लिए जलने वाले दीप इसी प्रकार के होते हैं। लोग उसकी काली राख को प्रसाद के रूप में ललाट पर लगाते हैं और घर भी ले जाते हैं।

बदरीनारायण की मूर्ति के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि वर्तमान मूर्ति नारद कुंड में पड़ी हुई थी। जब आदि शंकराचार्य तपस्या करने के बाद यहाँ आए तब उन्होंने नारद कुंड में से मूर्ति बाहर निकाली और एक पेड़ के नीचे उसकी स्थापना की। इसी स्थान पर आगे चलकर वर्तमान मंदिर का निर्माण हुआ। बदरीनाथ को टिहरी गढ़वाल के राजाओं ने अपना इष्टदेव माना और मंदिर के निर्माण में अपना विशिष्ट योग दिया।

मंदिर जिस स्थान पर बना है, वहाँ पीछे की ओर से नारायण पर्वत के

हिम शिलाखंडों के फिसलने का भय रहता है। नीचे से अलकनदा के कटाव का भी खतरा है। मदिर को हिमखडो से पहले भी कुछ हानि पहुँच चुकी है। अतः उसके पुनर्निर्माण की व्यवस्था की गई है। पुनर्निर्माण मे इस बात का ध्यान रखा जा रहा है कि मंदिर की उत्तराखंड शिल्प शैली को अक्षुण्ण रखा जाए।

आजकल मदिर का प्रबंध उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से होता है। पुजारी दक्षिण मे स्थित केरल के नबूदरी ब्राह्मण है, जो रावल कहलाते है। शंकराचार्य के समय से ही यह व्यवस्था चली आ रही है। कहाँ दक्षिण और कहाँ उत्तर ! भारत पुराने जमाने से ही इस प्रकार एकता के सूत्र में बँधा था। देश की भावात्मक एकता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है ?

मदिर के पास अलकनदा के किनारे ब्रह्मकपाल नामक एक चट्टान है जहाँ लोग पितरों को पिंड दान, तर्पण आदि करते है।

बदरीनाथ पुरी में एक छोटा-सा बाजार है। यहाँ डाक और तार-घर भी है। पहले केवल अलकनदा के दाहिने किनारे नारायण पर्वत की ओर ही बस्ती थी। अब नर पर्वत की ओर भी बहुत बड़ी बस्ती बन गई है। यहाँ यात्रियो के ठहरने की बहुत ही सुदर व्यवस्था है। इतनी धर्मशालाएँ और विश्रामगृह बन गए हैं कि हजारों यात्री एक समय में ठहर सकते है, जिनके लिए बिस्तर और रजाई की सुविधा भी प्राप्त है। इस बदरीनाथपुरी मे छह महीने (मई से अक्तूबर) जहाँ चहल-पहल और दर्शनार्थियो की भीड़ लगी रहती है वहाँ शेष छह महीने शीतकाल में सारी पुरी कई मीटर ऊँची बर्फ़ से ढक जाती है और पूरा अचल निर्जन बन जाता है।

हम ब्रह्मकपाल से लौट ही रहे थे कि अचानक बादल छा गए। कुछ ही देर मे बादलों की गड़गड़ाहट होने लगी, बिजली कड़कने लगी और कुछ ही क्षणों में ओले गिरने लगे। धरती ओलों से पट गई, पर देखते ही देखते बादल गायब! धूप निकल आई पर साथ ही हिमकण रुई के फाहे जैसे गिरने लगे। सूर्य किरणो से ये हिमकण छनकर ऐसा झिलमिल वातावरण पैदा कर रहे थे कि मैं उस सुंदर इंद्रजाली दृश्य को कभी भूल न सकूँगा। यहाँ दिन मे तीन-चार घंटे ही सूर्य के दर्शन होते है। मै अकेला बैठा बर्फ़ से आवृत्त नीलकंठ पर्वत की चोटी को देखता रहा। मुझे इतना तल्लीन देखकर मेरी पत्नी यह न समझ सकी कि इन बर्फ़ीली चोटियों में ऐसा कौन-सा आकर्षण है ?

ठीक बारह बजे मदिर में भोग लगता है। पीतल के हंडों मे चावल पकाया जाता है। भोग के बाद यात्री उस चावल को खाने और बाँटने के लिए खरीद लेते है।

मंदिर में नित्य शाम के पाँच से छह बजे तक कथा-प्रवचन चलता है जिसमें सैकड़ों लोग भाग लेते है ।

दूसरे दिन मुझे अलकनंदा में नहाने की सनक चढ गई । सबके मना करने पर भी मैंने उसमें एक डुबकी लगा ली । पानी इतना ठंडा था कि मेरा सारा शरीर सुन्न पड़ गया। उँगलियों को बंद न कर पाया। सारी हड्डियाँ अकड़ गईं । मैं बहुत घबरा गया। सारे बदन में बेहद दर्द हो रहा था । सिर झन-झना रहा था । मेरी यह स्थिति देखकर मेरी मूर्खता पर मुझे सभी कोसने लगे । मैं शीघ्र ही तप्त कुंड में प्रविष्ट हो गया। कुंड के पानी में दस मिनट रहने के बाद शरीर के अंगांग में स्फूर्ति आ गई । मेरी पत्नी ने मेरी सनक पर मुझे खूब कोसा । लेकिन मुझे संतोष था कि अपने आप मुसीबत मोल लेकर मैंने एक अनोखा अनुभव प्राप्त किया । उस दिन से मेरी पत्नी मेरी पहरेदार बन गई जिससे दुबारा ऐसी मुसीबत मोल न ले सकूं ।

भारत के उत्तरी सीमांत का अंतिम गाँव माणा अलकनंदा तथा सरस्वती के संगम पर बदरीनाथ से लगभग साढ़े चार किलोमीटर दूर बसा है। सरस्वती नदी के किनारे-किनारे एक सड़क माणा गाँव होती हुई माणा हिमदर्रे तक चली गई है । इस 5,370 मीटर ऊँचे हिमदर्रे पर ही भारत और तिब्बत की सीमाएँ मिलती हैं ।

गाँव के निकट ही थोड़ी-सी ऊँचाई पर चौकोर चट्टान भोज पत्रों की पुरानी पोथी-सी दिखलाई देती है । लोग इसे व्यासजी की पोथी कहते है । यह चट्टान ऐसी बनी है जैसे स्लेट जैसी पतली-पतली चट्टान की सैकड़ों तहें एक दूसरे से चिपकी हुई हों । इसके पास ही एक गुफा है जो व्यास-गुफा के नाम से प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि व्यासजी ने इसी गुफा में सारे वेदों, महाभारत और पुराणों को गणेश जी से लिखवाया था । तत्पश्चात् वेदों को विषयानुरूप चार भागों में बाँटकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के रूप में संगृहीत किया गया ।

लगभग डेढ़ सौ मीटर की चढाई चढने के उपरांत हम सरस्वती घाटी पर बने उस प्राकृतिक पुल को देखने गए जिसे भीम का पुल कहते है। यहाँ पर नदी दोनों ओर सीधे खड़े पहाड़ों के बीच बहुत अधिक गहराई में बहती है । यहाँ नदी अत्यंत सँकरी है । एक विशाल पत्थर ने न जाने किस युग में चोटी से गिरकर धारा के लगभग साठ मीटर ऊपर फँसकर दोनों ओर की पहाड़ियों को मिला दिया है । यह पत्थर ही भीम का पुल कहलाता है । पुल के नीचे से गहराई में बहती हुई नदी का गर्जन दोनों चट्टानों से टकराता, अनेक ध्वनि-प्रतिध्वनियों का तुमुल निनाद करता हुआ सारे वातावरण को कंपायमान करता रहता है। दूर नीचे जल धारा और चट्टान के संघर्ष से उत्पन्न जल-बिंदुओं

के कुहासे पर सूर्य की तिरछी किरणें चंचल इंद्र धनुष का जाला बुनती रहती है। इस विलक्षण सौन्दर्य के दर्शन से मैं रोमांचित हो उठा।

माणा गाँव वालों ने बताया कि हम शीतकाल में गाँव छोड़कर नीचे घाटियों की ओर चले जाते हैं और ग्रीष्मकाल में गाँव लौट आते हैं। बदरीनाथ मंदिर के पट बंद होते ही सारा गाँव खाली हो जाता है। जाड़ों में सारा गाँव पाँच सात मीटर ऊँची हिम की तह में ढक जाता है। इस तरह गाँव का जीवन पूरी तरह प्रकृति के हाथ में है।

इस गाँव का सामरिक दृष्टि से विशेष महत्व है। चीनी आक्रमण के बाद से यह क्षेत्र सुरक्षा की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो गया है। जाड़ों में जब पूरा अंचल बर्फ से ढका रहता है हमारी सेना के जवान सीमा की रक्षा के लिए यहाँ तैनात रहते हैं। माणा की यात्रा में बर्फ के ग्लेशियरों पर चलने का आनंद मिल जाता है। इसके आगे जो ग्लेशियर दिखाई देते हैं, यात्री वहाँ तक पहुँच नहीं पाते।

माणा के पश्चिम में भीम पुल पार कर लगभग 8 किलोमीटर दूर वसुधारा पहुँचते हैं। वसुधारा के प्रपात की अपनी विशेषता है। यहाँ ऊपर से गिरती हुई जल-राशि की असंख्य बूँदे नीचे आते-आते हिमकणों में बदल जाती हैं। ये ही कण बाद में नीचे के विशाल हिमनद के अंग बनते जाते हैं। इस प्रपात और हिमनद का सौन्दर्य अत्यंत मनोरम है। यहाँ से चौखंभा पर्वत के भी दर्शन होते हैं और अलकनंदा की दुग्ध-धवल पतली धारा आती हुई दीख पड़ती है। वसु-धारा देखने के लिए प्रातःकाल जाकर दोपहर तक वापस आ जाना चाहिए; क्योंकि अपराह्न में वर्षा होने और बर्फीले तूफानों का भय रहता है।

वसुधारा से आगे बढ़कर सतोपंथ नामक ग्लेशियर है जिसे एक बड़ा हिम सरोवर समझना चाहिए। वसुधारा का वास्तविक स्रोत यही है। तीन दिन बदरी में बिताकर चौथे दिन हम केदारनाथ की ओर रवाना हुए।

केदारनाथ

7 मई को आठ बजे सवेरे हम बस अड्डे पहुँचे। मालूम हुआ कि साढ़े नौ बजे रुद्रप्रयाग के लिए बस मिलेगी। बस चालू करने के लिए अभी से प्रयत्न हो रहे थे। इंजिन गरम किया जा रहा था। ठीक समय पर बस चली। शाम के साढे पाँच बजे हम रुद्रप्रयाग पहुँच गए। वहाँ मालूम हुआ कि सवेरे आठ बजे केदारनाथ जाने के लिए बस मिलेगी।

रुद्रप्रयाग काफी बड़ी बस्ती है। यहाँ गर्मी बहुत ज्यादा थी। खाना खाकर बिना ओढ़े कमरे के बाहर सो गए। अच्छी नींद आई। सवेरे पाँच बजे आँखे खुलीं। सब लोग नहाने के लिए संगम की ओर चल पड़े। मन्दाकिनी और अलकनदा के सगम मे उतरकर नहा नही पाए, क्योंकि पानी की धारा बहुत तेज थी। यहाँ दोनों नदियाँ वेग से मिलती हैं। पानी मे उतरना खतरे से खाली नही था। लोटे से पानी ले-लेकर नहाया और चामुंडी माता के दर्शन कर पूजा की। आठ बजे केदारनाथ के लिए बस पकड़ ली।

रुद्रप्रयाग से उन्नीस किलोमीटर दूर अगस्त्य मुनि नामक स्थान है। कहा जाता है कि पुराने जमाने मे अगस्त्य मुनि ने यहाँ तप किया था। उनका एक मंदिर भी है। उसके आगे पंद्रह किलोमीटर जाने पर कुंड नामक एक छोटी बस्ती मिलती है। यहाँ दो रास्ते है। एक केदारनाथ की ओर जाता है, दूसरा ऊखी मठ होते हुए, तुगनाथ एवं [illegible] की ओर।

ऊखीमठ का अपना ऐतिहासिक महत्व है। कहते है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने बाणासुर की कन्या उषा से यही विवाह किया था। उषा के नाम पर ही इस स्थान का नाम ऊखी मठ पड़ा है। यहाँ उषा-अनिरुद्ध के मंदिर बने हुए हैं। यह समुद्र तल से 1,350 मीटर ऊँचाई पर है। जब शीतकाल में केदारनाथ के पट छह महीने के लिए बंद हो जाते है, तब वहाँ के स्वामी जी और पुजारी केदारनाथ की चल मूर्ति के साथ ऊखी मठ में आकर रहते है। छह महीने तक यही केदारनाथ जी की पूजा होती है। यहाँ चित्ररेखा और ओंकारेश्वर के भी मंदिर है। यहाँ यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला, डाक घर एव अस्पताल की व्यवस्था है।

ऊखीमठ से बदरीनाथ की दिशा में बाएँ हाथ की पहाड़ी पर नीलमणि-दिउरी नामक ताल स्थित है। दिउरी एक रमणीक जलाशय है। स्वच्छ नीले रंग का जल इस बात का साक्षी है कि यह तालाब बहुत गहरा है। इसकी परिधि लगभग 1 किलोमीटर है और उसका धरातल समुद्र तल से 2,400 मीटर ऊँचा है। जिस पर्वत पर यह स्थित है वह एक धार-सा है जिसका सिलसिला बदरीनाथ के निकट तक चला गया है।

इस जलाशय में इन पर्वत श्रेणियों का प्रतिबिंब बहुत स्पष्ट झलकता है। इस जलाशय की परिक्रमा करते-करते हम आनंद विभोर हो उठे और मुझे श्रीधर पाठक की कविता की यह पंक्ति स्मरण हो आई :

'प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति'

हमारी बस अब गुप्तकाशी पहुँच चुकी थी। गुप्तकाशी समुद्रतल से 1,350 मीटर की ऊँचाई पर है। यहाँ विश्वनाथ तथा अर्द्धनारीश्वर के मंदिर और कुंड हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मर्षियों ने यहीं शिवलोक प्राप्त किया था। यह भी प्रसिद्ध है कि यहाँ गंगा और यमुना गुप्त रूप मे रहती है। अतः इस जगह का नाम गुप्तकाशी पड़ा।

गुप्तकाशी से लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर केदारनाथ के पथ से हटकर कालीमठ है। यह जगदंबा के सिद्ध पीठों में से एक माना जाता है। मान्यता है कि असुरों का संहार करने के उपरांत माँ काली ने खड्ग प्रहार से यहीं अपना प्रकट रूप विसर्जित किया था। यहाँ पुराने ढंग का एक छोटा मंदिर है और कोई मूर्ति न होकर भूमि मे एक रजत मंडित वेदिका-सी बनी हुई है। निकट ही काली नदी बहती है। पानी का रंग यमुना जल जैसा श्यामल है। मंदिर के परिवेश और आराधना-पद्धति में स्थानीय विशेषता परिलक्षित होती है।

फाटा, रामपुर और सीतापुर होते हुए हम अपराह्न एक बजे सोनप्रयाग पहुँचे। इसके आगे तब बसें नही जाती थी, अब गौरीकुंड तक जाने लगी है। यहाँ से केदारनाथ चौदह किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। सोनप्रयाग मे सोनगंगा तथा मंदाकिनी का संगम होता है। यहाँ एक छोटा-सा बाजार है। जो यात्री पैदल नहीं चल सकते उन्हें पहाड़ पर ले चलने के लिए तीन प्रकार के साधन है—डोली या डाँडी, घोड़ा और कंडी। डोली चार या छह आदमी ढोते है। कुछ लोग घोड़े पर भी जाते है। कंडी एक टोकरी होती है जिसे एक ही कुली ढोता है। सामान ले चलने के लिए अलग से कुली मिलते है। पहाड़ पर पैदल चलने वालो के लिए लाठी आवश्यक होती है क्योंकि यहाँ की चढ़ाई खड़ी है।

हमने केदारनाथ पैदल जाने का निश्चय किया। सामान ले चलने के लिए एक कुली को साथ ले लिया। अनावश्यक चीजों को बाँधकर 'सामान घर' मे छोड़ दिया। शाम के चार बजे केदारनाथ की ओर रवाना हुए। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार उस दिन रात को हमे गौरीकुंड में पड़ाव डालना था।

सोनप्रयाग से 5 किलोमीटर की दूरी पर त्रियुगीनारायण है। यह समुद्र तल से 1,800 मीटर ऊँचा है। यहाँ शंकर और विष्णु के मंदिर है। भगवान की नाभि से जल निकलकर कुंड मे गिरता है। कहा जाता है कि शंकर और पार्वती का विवाह यही अग्निकुंड के सामने हुआ था। मान्यता है कि अग्निकुंड में आग तीन युगों से आज तक जल रही है। यही इसकी विशेषता है। यात्रीगण इस कुंड मे हवन करते हैं। यहाँ अग्निकुंड के अलावा ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड रुद्रकुंड एव सरस्वतीकुंड है। यात्री इनमे स्नान कर हवन तथा तर्पण करते हैं। सरस्वती कुंड मे सुवर्ण रंग वाले छोटे-छोटे साँप बड़ी मात्रा मे पाए जाते है। ये साँप काटते नही। पानी में यदि हम उतरते है तो ये सब नीचे चले जाते है। यहाँ के मंदिर में काफी अंधेरा रहता है। अतः रोशनी का इंतजाम कर लेना पडता है। चारो ओर घना जंगल है, पर जंगल का शांत वातावरण मन को मोह लेता है।

सोनप्रयाग से केदार मार्ग पर गौरीकुंड पाँच किलोमीटर है। यह रास्ता दुर्गम चढ़ाई का है। यहाँ काफ़ी ठंड थी। हम आगे बढ़ते जा रहे थे। मैं एवरेस्ट पर्वतारोही तेनसिंह एव हिलेरी की साहस भरी कहानियाँ अपने मित्रो को सुनाता जा रहा था जिससे उनको मार्ग का कष्ट महसूस न हो। शाम के छह बजे हम गौरीकुंड पहुँच गए। यहाँ गरम पानी का एक कुंड है। कुंड मे नहाने से पैदल चलने की सारी थकावट दूर हो गई।

गौरीकुंड समुद्रतल से 1,800 मीटर ऊँचा है। अतः यहाँ बहुत ठंड पड़ती है। रात को हम काली कमली वाले की धर्मशाला में ठहर गए। ओढ़ने के लिए किराए पर हमने रजाइयाँ ले ली। गरम खाना खाकर सो गए। थकावट के कारण बड़ी मीठी नींद आई। सबेरे पाँच बजे ही मेरी आँख खुली। मैंने सबको जगाया और एक बार फिर गौरीकुंड में नहाने का आनंद लिया। सामान बाँधकर कुली के हवाले करते हुए मैने उसे बता दिया कि जिस पड़ाव मे पानी और चाय की सुविधा हो, वहाँ ठीक नौ बजे रुक जाना। हमारे चलने की रफ़्तार तुम अब पहचान गए हो।

"हाँ साब", कहकर वह चल पड़ा।

ये लोग पहाड़ों पर आसानी से चढ़ते है। बहुधा मुख्य मार्ग छोड़कर पगडंडी से आगे बढ़ जाते हैं। जिस मार्ग को तय करने मे हमें दो घंटे लगते हैं,

उसे वे एक घंटे मे ही पूरा कर लेते है। वे बडे परिश्रमी और ईमानदार होते है।

गौरीकुंड मे हम पार्वती-मंदिर गए। उस मंदिर के सामने एक कुंड है जिसका पानी गरम तो नही पर उसका रंग पीला है। यात्रीगण हल्दी खरीद कर यहाँ कुंड मे डालते हैं और पूजा-पाठ करवाते है। पुजारी जी ने बताया था कि यहाँ पार्वती ने शंकर भगवान् को पति के रूप मे प्राप्त करने के लिए कठोर तप किया था।

आगे कृष्ण-मंदिर था। पूजा-पाठ हुआ। ठीक छह बजे एक प्याला गरम चाय पीकर हम सब केदारनाथ की ओर रवाना हुए। हमें अब कुल 14 किलोमीटर पैदल चलना था। मैंने अंदाज लगाया कि प्रति घंटे 3 किलो-मीटर की रफ्तार से चले तो 14 किलोमीटर तय करने मे 11 बज जाएँगे। खान-पान के लिए एक घंटा और लगा तो भी 12 बजे तक हम केदारनाथ पहुँच जाएँगे। पर मेरा अंदाज गलत साबित हुआ। पहाड़ी रास्ता एकदम चढ़ाई का था। ठीक नौ बजे एक चट्टी पर कुली हमारा इंतजार करते हुए एक घंटे से बैठा हुआ था। फिर हमने भात खाया और कुली को भी भात खाने को दिया। फिर सबने चाय पी। कुली से कह दिया कि हमारी प्रतीक्षा किए बिना वह केदारपुरी तक चला चले।

केदार का मार्ग मंदाकिनी के किनारे-किनारे होकर जाता है। यह घाटी अपनी हरीतिमा के लिए प्रसिद्ध है। बदरीनाथ की यात्रा मे हमें अधिकतर वनस्पति विहीन पहाड़ मिले थे। इसके विपरीत यहाँ हमे हरे-भरे वृक्ष और मखमली घास सर्वत्र दिखाई देती है। पहाड़ से बहते झरने बरबस मन मोह लेते हैं। यह घाटी तीन से चार हजार मीटर की ऊँचाई के बीच फैली है। इस रमणीक भू-भाग मे छोटी-छोटी झाड़ियाँ और मखमली घास मिलती है जो बुग्गी के नाम से जानी जाती है। यह जानवरो के लिए बडी पौष्टिक घास है। इस मखमली घास के बुग्यालों के बीच अनेक जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती हैं। आकर्षक रंगों के नाना प्रकार के पुष्प भी मिलते हैं।

हम लगातार तीन चार किलोमीटर चलते और सुरम्य स्थान पर बैठकर आराम करते। एक ओर घना जंगल दूसरी ओर कल-कल बहती मंदाकिनी का फेनिल प्रवाह। ऊँचाई से गिरते झरनो का आनंद उठाते, पक्षियों का कल-रव सुनते हुए हम मार्ग तय कर रहे थे, पर मार्ग हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ता ही जा रहा था। साढ़े तीन बजे एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ से हमे बर्फ़ पर पैदल चलना था। यह स्थान 'देवदर्शिनी' कहलाता है। यहीं से केदारनाथ पुरी के दर्शन होने लगते है। तीन किलोमीटर का रास्ता शेष था। चारो तरफ़ बर्फ़ ही बर्फ़। हम बहुत थक गए थे, पर केदारनाथ पुरी के देखते ही हमारी

हिम्मत बढ़ गई। बर्फ़ पर चलना आसान नहीं था, पैर फिसलते थे। नुकीली लाठी को बर्फ़ में गड़ाकर पैर जमा-जमा कर चलना पड़ता था, यदि पैर फिसल जाते तो हम सीधे सौ-सवा सौ मीटर नीचे बहने वाली मदाकिनी में जा गिरते। ठीक पांच बजे हम केदारनाथ पुरी पहुँच गए। चौदह किलोमीटर तय करने मे हमें ग्यारह घंटे लगे। शरीर थककर चूर-चूर हो गया था। कड़ाके की सर्दी पड रही थी। केदार क्षेत्र में अनेक दलदल है। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम केदार पड़ा है। केदारनाथ का मदिर तीन ओर से हिम-मंडित पर्वतों के बीच घाटी मे मदाकिनी के किनारे पर स्थित है।

पूरी की पूरी केदारपुरी बर्फ़ से ढकी थी। सरकार की तरफ़ से कुली बर्फ़ को काट-काटकर रास्ता बना रहे थे। हम छोटे बच्चों की तरह बर्फ़ का गोला बनाकर एक दूसरे पर फेंकते हुए आगे बढ़ रहे थे। दसों दिशाओं से बर्फ़ ही बर्फ़ देख हमें ऐसा अनुभव होने लगा मानो हम बर्फ के समुद्र में घिर गए है।

केदारनाथ समुद्र तल से 3,581 मीटर ऊँचाई पर है। अतः बदरीनाथ की अपेक्षा यहाँ ऑक्सीजन की मात्रा कम है। यात्रियो को खिड़कियाँ खोलकर सोना पड़ता है। हमने सुना कि पिछले साल दरवाजा खिड़की बंद करके सोने से एक दपती की मृत्यु हो गई थी।

हमारा कुली मद्रासी धर्मशाला मे सामान रखकर मध्याह्न से हमारा इंतजार कर रहा था। हमने यहाँ कमरा लिया। कमरा बड़ा सुदर और साफ-सुथरा था। छत के नीचे लकड़ी लगी हुई थी। हमने किराये पर रजाइयाँ ले ली और बिस्तर में घुसकर लेट गए। पंडाजी ने गरम-गरम चाय पिलाई। हाथ-मुँह धोने के लिए एक बाल्टी गरम पानी भी मिला। बर्फ़ के जम जाने से नल से पानी नही निकलता था। पूछने पर मालूम हुआ कि अभी एक महीने तक ऐसा ही रहेगा। बारह बजे से दो बजे तक यदि धूप बनी रही तो पानी नल से निकलेगा।

ठंड बेहद थी, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। हमारी यह अवस्था देख पंडाजी ने कोयला जलाकर तापने के लिए कमरे मे रख दिया। हम सब आग के चारों ओर कम्बल ओढ़कर बैठे और गप-शप करते हुए खिड़की से मंदिर के दर्शन भी कर रहे थे।

शाम के सात बजे पडाजी हमे आरती देखने के लिए मंदिर ले चले। मंदिर की दीवारों के शिल्प में सादगी है। मदिर के सामने का नदी आँगन की शोभा बढा रहा था। सात बजने पर भी काफी प्रकाश था। फिर हमारे देखते-देखते अचानक बादल छा गए और वर्षा होने लगी। मोती के सदृश छोटे-छोटे ओले गिरने लगे। मंदिर का सारा आँगन ओलों से भर गया। यह मंदिर बदरीनाथ की तुलना में बड़ा है। केदारनाथ के अलंकार दर्शन हुए।
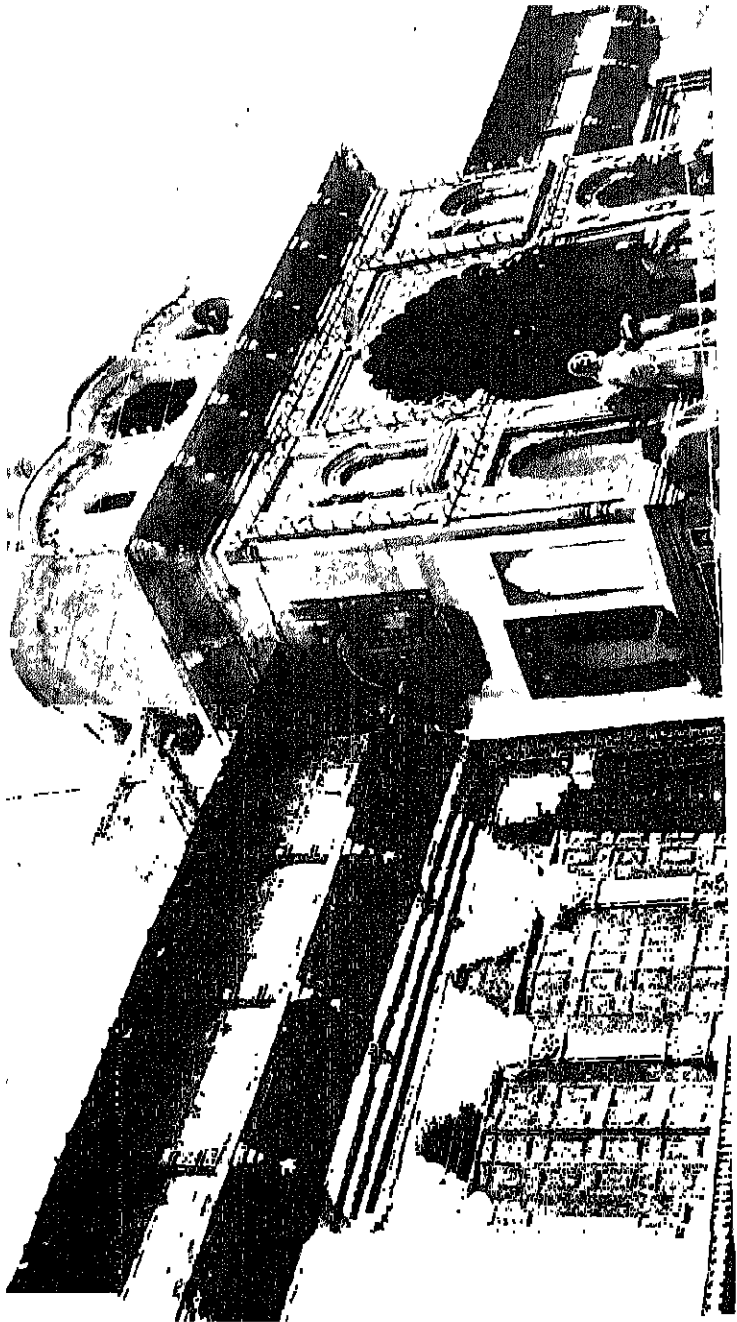
बदरीनाथ मंदिर का सिंह द्वार।

हिमधवल नीलकंठ पर्वत की चोटी जो बदरीनाथपुरी से दिखती है।
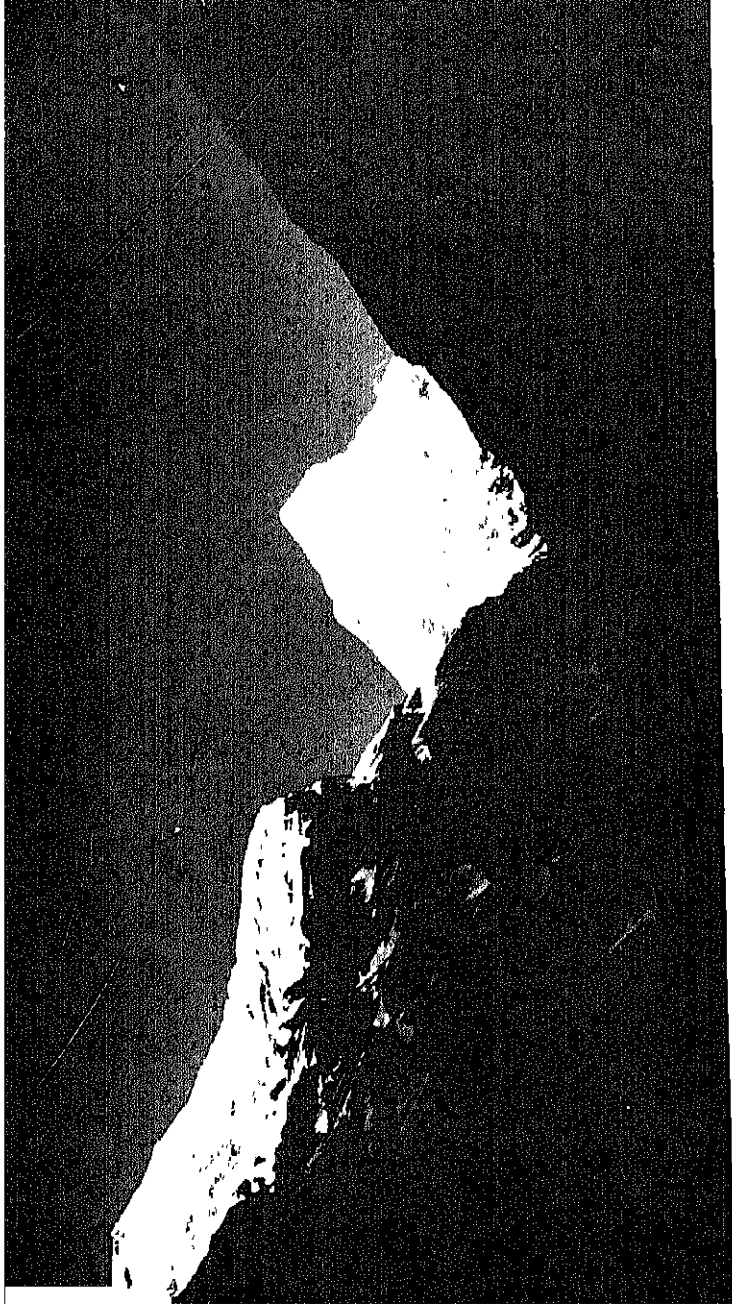
असंख्य इन्द्र धनुषों वाला वसुधारा का प्रपात।
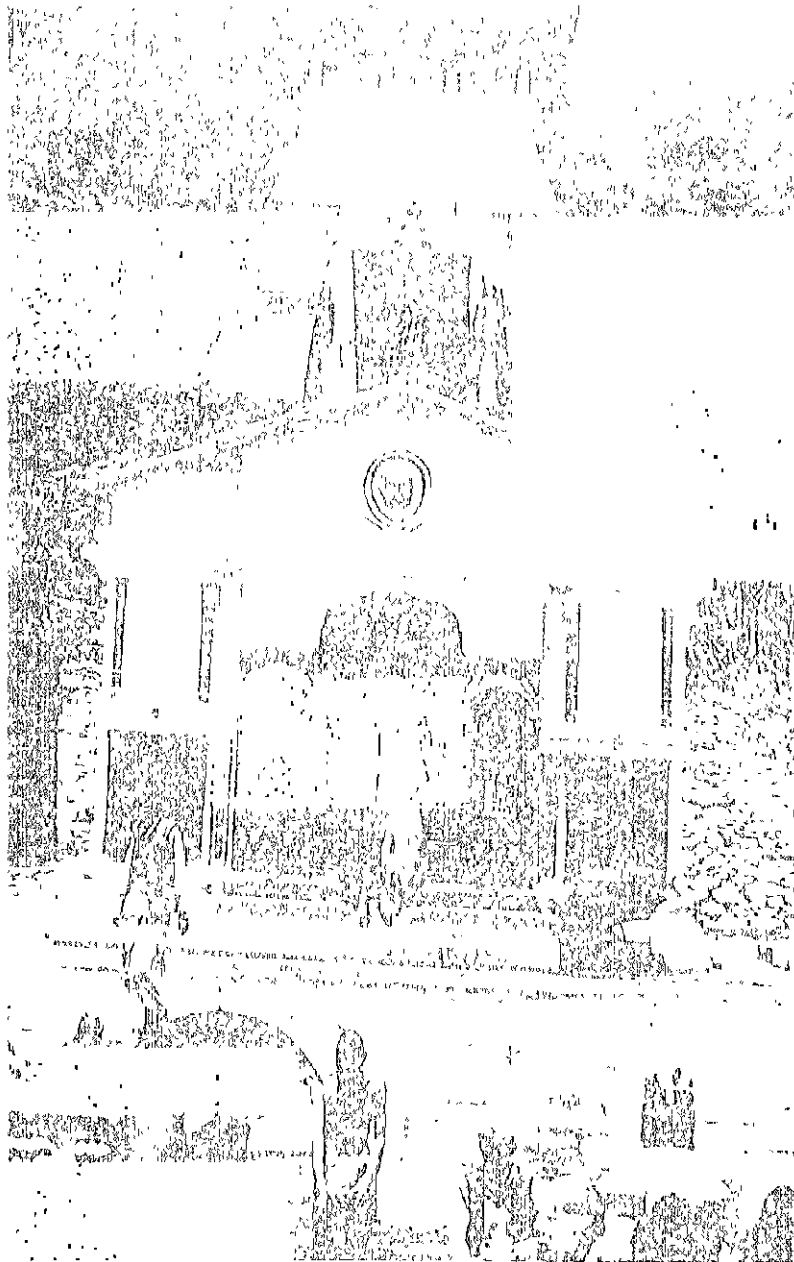
गुप्तकाशी का विश्वनाथ मंदिर। सामने कुंड से स्नान करते हुए भक्त जन।

केदारनाथ जाने वाले बीहड़ मार्ग पर बना लकड़ी का सँकरा पुल।
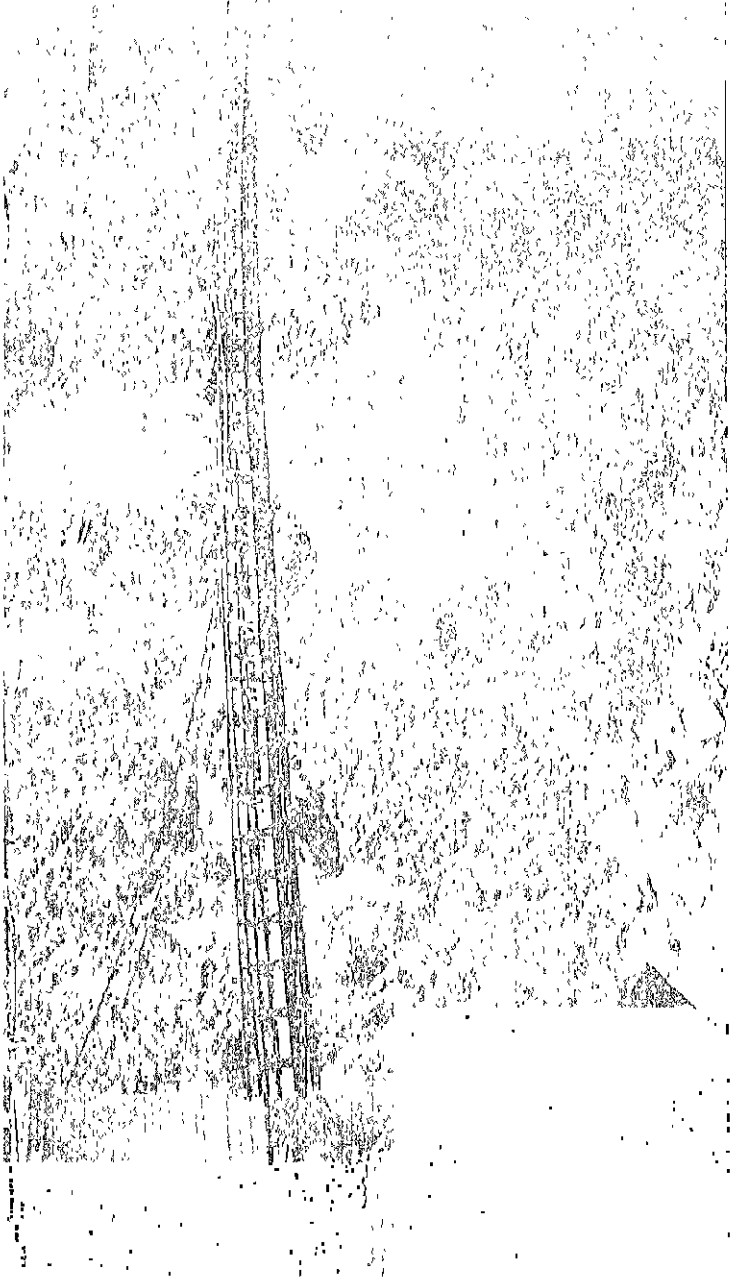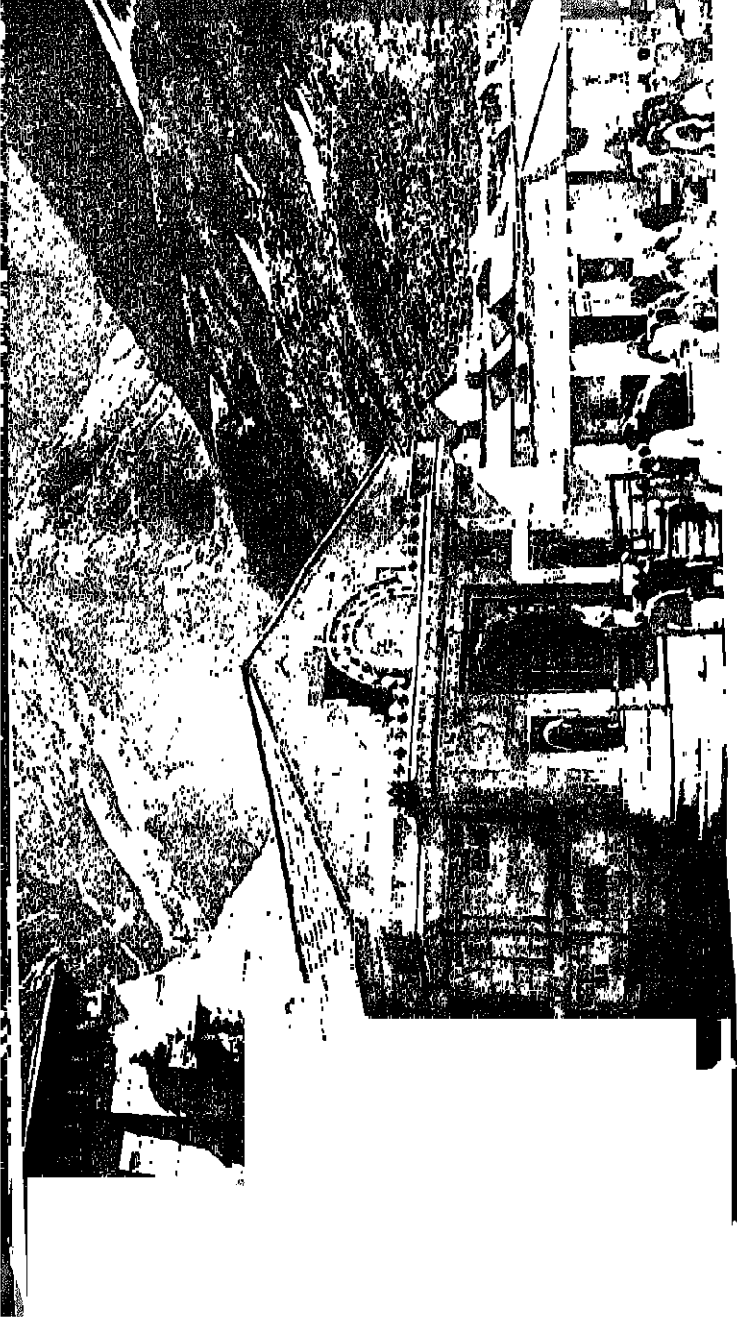
हिम मंडित पर्वतों के बीच मंदाकिनी के किनारे बना केदारनाथ का मंदिर।
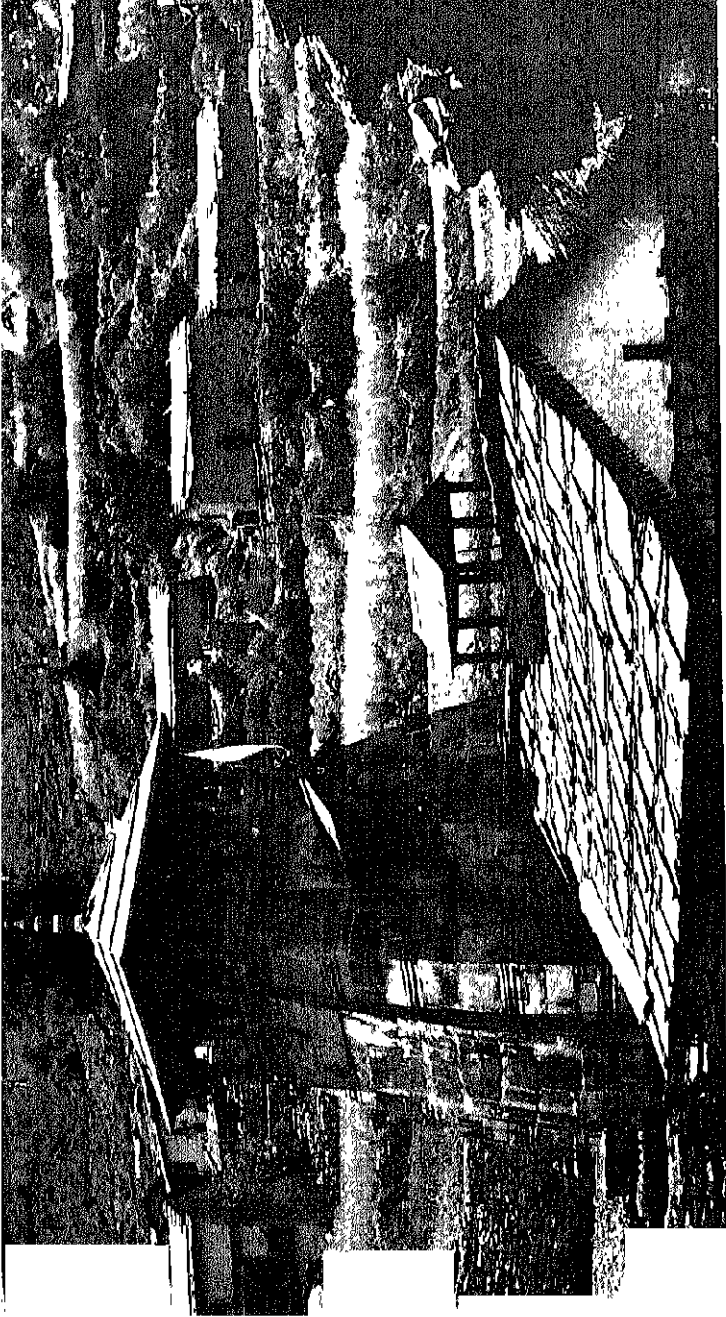
केदारनाथपुरी की एक झाँकी।

केदारनाथपुरी में प्रतिष्ठापित आदि शंकराचार्य की मूर्ति।

मूर्ति श्याम वर्ण का एक विशाल शिलाखंड है। यह शिलाखंड महिष रूपी पशुपतिनाथ का पिछला भाग है। इस मूर्ति के संबंध में बड़ी रोचक कथा प्रचलित है। कहते हैं महाभारत युद्ध में अपने संबंधियों का विनाश देखकर पांडव बहुत दुखी हुए और हिमालय की ओर चल दिए। वे प्राण त्यागने से पहले शिव का दर्शन करना चाहते थे, पर शंकर को इन कुलघातियों का मुँह देखना स्वीकार न था। जब पांडव उन्हें खोज रहे थे, शिव ने महिष का वेश धारण कर लिया और केदार क्षेत्र में चर रहे पशुओं में सम्मिलित हो गए। लेकिन पांडवों ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा और भीम ने उन्हें पहचान ही लिया। इस पर शिव पृथ्वी में समाहित होने लगे तो भीम के हाथ में उनका केवल पृष्ठ भाग ही आ सका। वही भाग शिला रूप में केदार में पूजा जाता है। शीर्ष भाग नेपाल के पशुपतिनाथ मंदिर में स्थापित है। केदारनाथ शंकर भगवान के बारह ज्योतिर्लिंगों में एक माना जाता है।

आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने इसी स्थान पर इस ज्योतिर्लिंग को पहचान कर नया मंदिर बनवाया था। मंदिर से थोड़ी दूर पर बर्फ़ के पहाड़ों से मंदाकिनी निकलती है।

आरती बड़ी धूमधाम से हुई। भीड़ नहीं थी। फिर भी केदारनाथ के दर्शन अच्छी तरह न कर पाए, क्योंकि मंदिर के अंदर का फर्श बहुत ही ठंडा था, जिस पर पैर ठिठुर रहे थे। मंदिर में पाँच पांडवों और द्रौपदी की भी मूर्तियाँ हैं। केदार भगवान् के दर्शन के बाद लोग इन मूर्तियों का आलिंगन कर पैसे चढ़ाते हैं।

रात के आठ बजे हम खाना खाने बैठे। गरम-गरम खाना खाकर, दो-दो रजाइयाँ ओढ़कर लेट गए। वैसे ही करवट बदलते-बदलते सारी रात आँखों में बिताई। ठंड के कारण निगोड़ी नींद नहीं आई। सवेरे आठ बजे मंदिर खुलने वाला था। अतः सात बजे एक बाल्टी गरम पानी मँगवाया और हाथ-मुँह धोकर मंदिर जाने को तैयार हो गए। उस दिन हम सब नहा नहीं पाए। लकड़ियों की कमी के कारण गरम पानी का प्रबंध न हो पाया। ठंडे पानी में नहाने की हिम्मत न हुई। बदरीनाथ में अलकनंदा में नहाकर मैंने जो अनुभव किया था उसको अभी तक भूल न पाया था।

आठ बजे मंदिर का द्वार खुला। पंडाजी मंदिर के गर्भ-गृह में ले चले। मूर्ति की अपने हाथों से ही पूजा करवाई। हमने मक्खन, फल, फूल, मेवा आदि मूर्ति पर चढ़ाकर जल से अभिषेक किया और मत्था टेक कर प्रणाम किया। सब यात्री अपना सिर उस विशाल शिला पर रखकर ही प्रणाम करते हैं। दक्षिण भारत में तो मंदिर के गर्भ-गृह में किसी को प्रवेश तक नहीं मिलता, मूर्ति

को छूना तो दूर रहा। यहाँ ऐसा प्रतिबंध नहीं है। बदरीनारायण में भी गर्भ-गृह में किसी को प्रवेश नहीं मिला था। यहाँ अधपका मीठा चावल प्रसाद के रूप में मंदिर की ओर से सबको बांटते हैं।

मंदिर के पीछे लगभग सौ मीटर की दूरी पर आदि शंकराचार्य की समाधि है। यहीं पर इन्होंने 32 वर्ष की आयु में अपनी इहलीला समाप्त की थी। आदि शंकराचार्य का जन्म दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में आठवीं शताब्दी में हुआ था। उनके पिता शिव गुरु और माता सती ने भगवान शंकर की उपासना कर इन्हें प्राप्त किया। अतः इनका नाम शंकर रखा गया। शंकर बचपन से ही बड़े मेधावी थे। वे अल्पायु में ही व्याकरण और धर्मशास्त्रों के प्रकांड पंडित बन गए। उनके लिखे उपनिषद् भाष्य आज भी प्रामाणिक माने जाते हैं।

समाधि-स्थल पर पहुँचते ही मेरी विचारधारा टूटी। समाधि की प्रद-क्षिणा करते-करते न जाने मुझे क्या हो गया··· बिलख-बिलख कर रो उठा। मेरी इस सनक पर मेरी पत्नी स्तब्ध रह गई। मैंने मन-ही-मन शंकराचार्य के उन 31 श्लोकों का पाठ किया जो वेद-उपनिषद्-पुराणों का सार संग्रह माने जाते हैं।

"भजगोविंद भजगोविंद, भजगोविंदं मूढ मते।"

मन को शांति मिली। समाधि के सामने पत्थर की एक बड़ी दीवार बनी है। शंकराचार्य का दिग्विजय पताका युक्त हाथ हिन्दूधर्म की दिग्विजय की सूचना देता है। भृगु पथ, मधुगंगा, क्षीर गंगा, चौराबाड़ी ताल, वायु का ताल, खगुल कुंड, भैरव शिला आदि यहाँ के दर्शनीय स्थान हैं।

केदारनाथ के पुजारी दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रदेश के रायचूर के निवासी होते हैं। हमें देखते ही कन्नड़ भाषा में बोलने लगे। वे दक्षिण के लिंगायत मठ के प्रतिनिधि हैं। शंकराचार्य के जमाने से ही यह परंपरा चली आ रही है। यहाँ भी भारत की भावात्मक एकता के दर्शन हुए। केदारनाथ में डाकघर, तारघर और अस्पताल की व्यवस्था है। यात्री ठंड के कारण यहाँ अधिक समय तक नहीं ठहर पाते।

अगले दिन सुबह दस बजे हम वापस गौरीकुंड को रवाना हुए। उतरते समय उतना कष्ट नहीं हुआ। रास्ते में मैंने एक अपूर्व दृश्य देखा। एक अंधा व्यक्ति लाठी टेकते हुए केदारनाथ की ओर जा रहा था। "जय केदारनाथ की" जयजयकार करते हुए, लाठी से रास्ता टटोल-टटोल कर वह आगे बढ़ रहा था। उसके न कोई साथी और न कोई सहारा था। एकमात्र मार्गदर्शक थी— लाठी। उसकी आस्था और दृढ़ विश्वास देखकर आश्चर्य हुआ। यदि सकुशल मंदिर पहुँच भी जाएगा तो क्या देख सकेगा? न मंदिर के दर्शन होंगे

न मूर्ति के। फिर भी उसके मन में श्रद्धा-भक्ति और अटल विश्वास है। हम सब इसकी साहसपूर्ण यात्रा पर नतमस्तक हो गए। उससे यह पूछने पर कि यदि वह फिसल गया तो नीचे खड्ड में गिर जाएगा, वह किसी के साथ क्यों नहीं आ रहा है, जवाब मिला, अंधे का साथी स्वयं परमात्मा है। "यदि वह गिर कर मरेगा तो भी कोई चिंता नहीं। आखिर परमात्मा के सानिध्य में ही तो मरेगा।"

शाम के छह बजे हम गौरीकुंड पहुंचे। 14 किलोमीटर आठ घंटों में तय कर पाए। हम थककर चूर-चूर हो गए थे। अपना शरीर भी भार स्वरूप लग रहा था। गौरीकुंड पहुँचकर तप्तकुंड में स्नान किया। शरीर का सारा दर्द दूर हो गया। रात में बड़ी मीठी नींद आई। सुबह उठकर फिर एक बार स्नान किया और सोनप्रयाग के लिए रवाना हो गए। दस बजे सोनप्रयाग पहुँचे। सामान छुड़ाकर कुली को पैसा देकर बिदा किया। श्रीनगर के लिए बस खड़ी थी। हम बस पर चढ़कर आगे की यात्रा के बारे में सोचने लगे। आज ग्यारह मई थी। यमुनोत्री का मंदिर चौदह को और गंगोत्री का मंदिर पंद्रह को खुलने वाला था। अतः अपने मित्र से सलाह-मशविरा कर यह तय कर लिया था कि पहले हम यमुनोत्री जाएँगे और बाद में गंगोत्री।

यमुनोत्री

11 मई की शाम के साढ़े चार बजे हम श्रीनगर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि वहाँ से सीधे यमुनोत्री जाने के लिए बस नहीं है। पहले टेहरी जाना होगा और वहाँ से यमुनोत्री। टेहरी के लिए बस कल सवेरे छह बजे ही मिलेगी। अतः हमें रात को वहाँ ठहरना पड़ा।

12 मई को सवेरे छह बजे टेहरी की बस पकड़ी। साढ़े नौ बजे टेहरी पहुँच गए। वहाँ हमें पता चला कि यमुनोत्री जाने के लिए ग्यारह बजे बस मिल जाएगी। हम पूड़ी-साग श्रीनगर से ही लाए थे, उसे खाकर चाय पी ली। टेहरी में काफ़ी बड़ा बाजार है। वहाँ बढ़िया चावल मिलता है। हमने चार किलो बासमती चावल खरीदा। फिर टिकट लेने कतार में खड़े हो गए। आसानी से हमें यमुनोत्री के लिए टिकट मिल गया।

टेहरी एक प्राचीन नगर है। इसके साथ पिछला बहुत-सा इतिहास जुड़ा है। स्वामी रामतीर्थ की तपस्थली यही टेहरी है। इसी क्षेत्र में गोदी सराय स्थित बमरोगी गुफा में चार साल रहकर उन्होंने साधना की।

स्वामी रामतीर्थ उत्तराखंड के पर्वतीय लोगों की निश्छलता तथा उनके सात्विक जीवन पर मुग्ध थे। वे कहा करते थे, "उत्तराखंड के प्रत्येक नर-नारी और बच्चे में मुझे भगवान् का साक्षात्कार होता है।" जब कोई टेहरी जाकर उनके दर्शन करता तब वे उनसे कहते थे कि इन गरीब लोगों की सहायता से ही भगवान् को प्रसन्न किया जा सकता है।

1902 ई० में जापान की राजधानी तोक्यो में सब धर्मों का सम्मेलन होने वाला था। टेहरी के महाराजा स्वामी रामतीर्थ की साधना एवं विद्वत्ता से प्रभावित थे। अतः उनके अनुरोध करने पर स्वामी रामतीर्थ विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने विदेश रवाना हुए। जापान एवं अमेरिका जाकर उन्होंने हिन्दू धर्म और वेदांत संबंधी प्रवचन किए। दो साल बाद भारत लौटे तो टेहरी आकर भगवती भागीरथी की शरण में रहने लगे।

स्वामी गंगा को साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा मानते थे। वे उसके तट पर घंटों समाधिस्थ रहते और उसकी स्तुति करते, वे कहा करते थे, "मैं अपनी माँ की गोद

में अनुपम आनंद का अनुभव करता हूँ। गंगा माँ का जल साक्षात् ब्रह्मद्रव है जो मुझे स्वर्गानंद का अनुभव कराता है।" सन् 1909 ई० में दीपावली के दिन स्वामी जी भावावेश में आए और उन्होंने गंगा में जलसमाधि ले ली।

हमने जिस टेहरी नगर को देखा, अब से कुछ ही वर्ष बाद केवल उसका नाम रह जाएगा। उत्तर प्रदेश शासन ने टेहरी में भागीरथी पर एक विशाल बाँध बनाने का निश्चय किया है और उसपर कार्य प्रारंभ हो चुका है। इस बहुउद्देशीय बाँध से जलविद्युत् का उत्पादन होगा और प्रदेश में सिंचाई की सुविधाओं में भी वृद्धि होगी। पूरा बन जाने पर इस बाँध के विशाल जलाशय में संपूर्ण टेहरी नगर और उसके निकटवर्ती अनेक गाँव सदा के लिए डूब जाएँगे। यहाँ की आबादी को बसाने के लिए दूर ऊँचाई पर नए नगर का निर्माण किया जा रहा है और किसानों को ऋषिकेश के निकट भूमि आवंटित की गई है।

बस कंडक्टर ने सीटी बजाई और हम बस पर बैठ गए। कुछ समय बाद हम धरासू पहुँचे। धरासू एक ऐसा स्थान है, जहाँ से गंगोत्री और यमुनोत्री के लिए अलग-अलग रास्ता है। बस यमुनोत्री के रास्ते पर आगे बढ़ी। शाम के चार बजे हम बरकोट पहुँचे। वहाँ चाय के लिए आधा घंटा विराम मिला। बरकोट में शुद्ध घी से बनी मिठाई और नमकीन चीजें मिलीं। बड़ा मजा आया। उत्तराखंड यात्रा में मुझे इससे बढ़िया खाद्य सामग्री अन्यत्र नहीं मिली थी। उसकी स्मृति आज भी बनी हुई है।

गंगाजी तक पहुँचते-पहुँचते हिम से आवृत्त चोटियों के दर्शन होने लगे। यहाँ चीड़ के पेड़ बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। इन वृक्षों से लीसा निकाला जाता है जिससे तारपीन का तेल बनाया जाता है। इससे पेन्ट तथा वार्निश आदि तैयार किए जाते हैं।

कहा जाता है कि पुराने जमाने में यहाँ गंगाजी के भक्त एक महर्षि रहते थे। यहाँ से लगभग 25 किलोमीटर दूर गंगा बहती थी। वहाँ जाने के लिए एक पहाड़ पार करना पड़ता था। महर्षि रोज इतनी दूर पैदल चलकर गंगा स्नान किया करते थे। जब वे बूढ़े हुए तब चलना कठिन हो गया। दुखी हो उन्होंने गंगा मैया को पुकारा। माँ उनकी पुकार सुन दौड़ी-दौड़ी आईं। उनकी निष्ठा से प्रसन्न हो बोलीं :

"बेटा ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के उद्देश्य से यहाँ आई हूँ। आज से मैं यमुना के किनारे वाले इस कुंड में रहूँगी। यहीं तुम आकर स्नान करो।" इतना कहकर वह कुंड में वास करने लगी। आज भी इस कुंड का पानी गंगा जल जैसा उजला और साफ़ है। तब से इस जगह का नाम गंगानी पड़ गया। इसे गंगनानी भी कहते हैं। यहाँ एक गरम कुंड भी है।

हम शाम पाँच बजे कौतनूर पहुँचे। आगे सयाना चट्टी तक बस को पहुँचना था पर बस ड्राइवर ने कह दिया कि आगे बस जाने के लिए सुविधा नहीं है। वह एक बहाना मात्र था। यहाँ से सयाना चट्टी बारह किलोमीटर थी। पैदल चलना पड़ता था। सब यात्रियों को विवश होकर कौतनूर में ही ठहरने के लिए विवश होना पड़ा। यद्यपि यहाँ ठहरने के लिए कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। एक खाली दुकान देखकर हम उसमे ठहर गए।

दूसरे दिन शाम के चार बजे तक हमे बस की प्रतीक्षा मे वहीं ठहरना पड़ा। दूसरी बस आई, पर उसके चालक ने भी सयाना चट्टी तक बस ले जाने से इनकार कर दिया। इस पर लोग हल्ला मचाने लगे। बीच में एक दलाल आया। बाद मे यह तय हुआ कि सयाना चट्टी तक ले चलने के लिए हर यात्री को तीन-तीन रुपए और देने होंगे। मैंने सबसे पहले रुपया देकर टिकट कटा लिया क्योंकि मैं बारह मील पैदल चलने से बचना चाहता था। इस तरह 13 मई की शाम के साढ़े पाँच बजे हम सब सयाना चट्टी पहुँच गए।

सयाना चट्टी में यात्रियो के ठहरने के लिए अच्छी सुविधा है। यात्रियो की सहायता करने के लिए सरकार से अनुमति प्राप्त संघ और संस्थाएँ हैं। यहाँ से यात्रियों को उस समय यमुनोत्री तक पैदल जाना पड़ता था, पर अब बसे हनुमान चट्टी तक जाने लगी है। कंडी या घोड़े भी किराए पर मिल जाते हैं। यहाँ का रास्ता बड़ा तंग है, इसलिए डोली या डांडी की व्यवस्था नहीं है। कंडी और घोड़े वालो ने कहा कि सवेरे छह बजे ही आपको रवाना होना पड़ेगा, अत: अभी से बुक करा लीजिए।

हम केदारनाथ मे पैदल चलकर बहुत थक गए थे : औरतो ने पैदल जाने से साफ इनकार कर दिया। हमारे पाँवो मे भी दर्द था। अतः हम सबने सर्व-सम्मति से यह निश्चय किया कि हम सब घोड़े पर चढ़कर ही यमुनोत्री जाएँगे। इसलिए काफी मोल-तोल के बाद चार सौ रुपए मे चार घोड़े किए, और दो सौ रुपए अग्रिम देकर पहले ही दिन बात पक्की कर ली।

14 मई के सवेरे पाँच बजे ही उठकर हम चलने के लिए तैयार हो गए। चार घोड़े तैयार थे। घोड़े वाले ने बताया—"साहब, आप इस चढाई पर चढकर, सीधे रास्ते पर चले जाइए। हम घोड़ा ले आएँगे"।

लगभग दो सौ मीटर की खड़ी चढाई थी। आगे सीधा रास्ता था। हमारे यहाँ पहुँचने के पहले ही घोड़े पहुँच चुके थे। घोड़े तो चार थे, पर उनको ले चलने वाले व्यक्ति दो ही थे। मैंने उनसे पूछा, "तुम दो हो, चार घोड़ों को कैसे सँभालोगे ?"

उत्तर मिला, "आप पहले चढ़कर देखिए। आपको अपने आप मालूम हो जाएगा कि हम उन्हें कैसे सँभालते हैं।"

यहाँ के घोड़े छोटे कद के होते हैं पर बड़े जीवट के और वफादार होते हैं। उन चार घोड़ों में से एक बड़ा ही शरारती था। वही मुझे मिला। यहाँ के और केदारनाथ के घोड़ों में बड़ा अंतर है। केदारनाथ में ऐसे घोड़ों को केवल सामान ले चलने के लिए दुकानदार इस्तेमाल करते थे। इन घोड़ों पर बैठने के लिए न जीना था न पकड़ कर चलने के लिए लगाम। पैर रखने के लिए उन्होंने एक रस्सी लटका रखी थी और हाथ में पकड़कर चलने के लिए गरदन में भी एक रस्सी बँधी थी। हम घोड़ों के ऊपर अपना-अपना कंबल डाल-कर आराम से बैठ गए।

घोड़ों के चलने के लिए अलग पगडंडी है। चढ़ाई तीखी है इसलिए आगे एक व्यक्ति घोड़े का लगाम पकड़ कर चलता, उसके पीछे तीन घोड़े। अंत में दूसरा व्यक्ति चलता था। इस तरह दो ही व्यक्ति चारों घोड़ों को सँभाल रहे थे। हमें कोई तकलीफ न हुई। रास्ता इतना तंग था कि इन घोड़ों को एक के पीछे एक होकर चलना पड़ता था। पहाड़ पर चढ़ते समय घोड़ा ऊपर को मुँह करके चलता था पर जब नीचे उतरता था तब हमें बड़ा डर लगता था। यों लगता था मानो हम अब गिरे तब गिरे। अतः हम नीचे तराइयों की ओर न देखकर, पहाड़ की ओर देखते हुए जा रहे थे। इच्छा होने पर भी यमुना की धार को मन भर देख न सके। जी घबराता था। रास्ते भर में कई झरने मिले। घोड़े जी भर पानी पीते और आगे चल पड़ते।

घोड़े बड़े होशियार थे। वे अपने मालिक की आवाज़ को और भाषा को आसानी से समझ जाते थे। 'चल बेटा चल' कहते ही चल पड़ते और 'रुक बेटा रुक' कहने पर रुक जाते थे।

इन घोड़ों के दोनों मालिक जवान थे। एक की उम्र 20 वर्ष रही होगी तो दूसरे की सोलह वर्ष। दोनों पहाड़ी गाना गाते जा रहे थे। पहला गंभीर प्रकृति का था और ज्यादा नहीं बोलता था।

रास्ता कितना ही तंग क्यों न हो ये घोड़े बड़ी सावधानी से चलते हैं और बुद्धि से काम लेते हैं, इसका परिचय मुझे जल्दी ही मिल गया। पगडंडी पर एक बहुत बड़ा पत्थर लुढ़क कर आ गया था। रास्ता लगभग बंद था। पहला घोड़ा दो क्षण रुका और फिर पत्थर पर चढ़कर आगे कूद पड़ा। उस घोड़े पर मेरे बुजुर्ग मित्र बैठे थे। वे अत्यंत घबरा गए, क्योंकि एक इंच भी इधर-उधर होने पर घोड़ा सवार सहित सैकड़ों मीटर नीचे यमुना में लुढ़क पड़ता और हड्डियों का नामो निशान न मिलता। देखते-देखते मेरा घोड़ा भी उस पत्थर के पास आ गया। वह भी दो क्षण रुका और चट्टान पर न चढ़कर बगल से निकल गया, यद्यपि बगल में केवल एक खुर रखने भर की जगह थी। यह सब क्षण भर में हो गया, पर दिल देर तक धड़कता रहा। हम

मन-ही-मन सोचने लगे कि यदि पहले से मालूम होता कि रास्ता इतना भयंकर और तंग है तो घोड़े पर न चढ़ते। कहीं-कहीं चट्टानें इतनी नीची थीं कि हमें बार-बार झुककर घोड़े की पीठ से चिपक जाना पड़ता था। अतः हम लोग घोड़ों से उतरकर पैदल चलने लगे।

ग्यारह बजे हम जानकी चट्टी पहुँच गए। एक घंटा आराम किया। घोड़ों ने चारा खाया। चाय पीकर साढ़े बारह बजे हम घोड़ों पर बैठकर यमुनोत्री की ओर चल पड़े।

"यमुना मैया की जय" नारा लगाते हुए कुछ लोग यमुनोत्री से वापस आ रहे थे। आज सवेरे ही मंदिर के पट खुले थे।

थोड़ी देर बाद घोड़े वालों ने बताया, "साहब ! आगे का रास्ता बड़ा तंग है। चढ़ाई ही चढ़ाई है। यमुनोत्री तक पैदल ही चलना होगा। बस चार किलोमीटर का फासला है।"

पाँच घंटों से घोड़े पर बैठने से जाँघों में दर्द होने लगा था। साथ ही भयंकर रास्ते का अनुभव हो ही गया था। अतः हमने कहा, "चलो, ठीक है। थोड़ा पैदल चलने का मजा लें।" हमारे उतरते ही घोड़े दौड़ पड़े और उनके मालिक उनके पीछे। दो मिनट में वे हमारी आँखों से ओझल हो गए।

ढाई बजे हम यमुनोत्री की घाटी पहुँचे। वहाँ से हमने देखा कि दो पतली धाराएँ पहाड़ से उतर रही हैं। ये धाराएँ आगे चलकर यमुना कहलाती हैं। इस घाटी की ऊँचाई 3,291 मीटर है। यह घाटी अत्यंत रमणीक है किंतु दोपहर होते ही यहाँ कुहरा छा जाता है और वर्षा होने लगती है। सौभाग्यवश आज बादल तो छा गए थे पर वर्षा न हुई। यहीं से हिम से आवृत्त ऊँची-ऊँची चोटियों के दर्शन होने लगते हैं। उनमें से एक चोटी का नाम है "बंदर पूँछ"। इस चोटी की ऊँचाई समुद्र तल से 4,421 मीटर है। रामायण और महाभारत में इस पर्वत को सुमेरु पर्वत कहा गया है। इसके पीछे एक कहानी है। श्री रामचंद्र जी लंका पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटे थे। अब अयोध्या में हनुमान को काम न था। अतः स्वामी से विदा लेकर वहाँ आकर वे विश्राम करने लगे। आस्तिकों का विश्वास है कि आज भी हनुमान वहाँ आराम कर रहे हैं। कहा जाता है कि हर साल हनुमान जी की सेवा करने अयोध्या से यहाँ एक बंदर आता है और लौटते समय अपनी पूँछ गवाँकर चला जाता है। यहाँ अत्यधिक ठंड है, खाने को कुछ नहीं मिलता। अतः बंदर को अपनी पूँछ खानी पड़ती है। नये बंदर के आते ही पुराना बंदर लौट पड़ता है। इस तरह बंदर की पूँछ गँवाने के कारण इस जगह का नाम 'बंदर पूँछ' पड़ा। इसे बंदर पूच्छ भी कहते हैं।

साल भर बर्फ से ढके होने के कारण इन चोटियों पर चढ़ना आसान नहीं है। हर साल मई से लेकर अक्तूबर तक पहाड़ पर चढ़ने की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ही भारत तथा अन्य देशो के अनेक पर्वतारोही यहाँ आते रहते है।

पहाड़ के ऊपर सुंदर वन प्रदेश है। कही-कही जगल इतने घने है कि अंधेरे के कारण पेड़ की डाल भी दिखाई नही पड़ती। जगल पार कर आगे बढे तो खुला मैदान मिलता है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। रंग-बिरंगे फूल खिले हुए है, जिन्हे देख हृदय की कली खिल जाती है। ये फूल अपनी भीनी-भीनी महक द्वारा किसको मुग्ध नही करते। यहाँ पहुँचकर सारा कष्ट भूल जाते है। ऐसा लगता है मानो नंदन वन मे पहुँच गए है। इन फूलो की घाटी मे स्थित एक हिमानी से जमुना नदी का जन्म होता है। जब जमुना लगभग 8 किलोमीटर नीचे उतरकर घाटी मे पहुँचती है तब उस घाटी को "यमुनोत्री घाटी" (अर्थात् जहाँ जमुना नीचे उतरी) कहते है।

प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथो मे यमुना का गुणगान खुलकर हुआ है। यह धारा पतितपावनी मानी जाती है। इसलिए लोग इसे आदर से यमुना मैया कह कर पुकारते है।

"बदर पूँछ" पहाड़ के एक भाग का नाम कलिंद है। इस क्षेत्र से यमुना का उद्गम होने के कारण उसका एक नाम कलिंदजा या कालिन्दी (कलिंद की बेटी) भी पड़ गया है। यहाँ पर पहाड़ बर्फ की दीवार जैसा दिखाई देता है। केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही इस पर चढ़ सकते है। यदि पैर फिसला तो सीधे यमपुरी पहुँचेंगे। असल में यमुना यमराज की बहन ही तो है। इसलिए यमुना का नाम यमी पड़ा और इस घाटी का नाम यमुनोत्री। इस प्रकार यमुनोत्री नाम सार्थक प्रतीत होता है। यमुना सूर्य की बेटी है। अतः उसका नाम सूर्य-तनया पड़ा है। इसका पानी साफ पर नीला-साँवला है। अतः इसका नाम 'कालगंगा' भी है। यह नाम भी कितना सार्थक है। यमराज की गंगा और काली सूरत वाली गंगा।

यमुना को 'असित' भी कहते हैं अर्थात् श्यामवर्ण वाली, कहा जाता है कि पुराने जमाने में असित नामक एक महर्षि रहा करते थे। उन्होने ही पहले पहल यमुना के उद्गम स्थान की खोज की थी। अतः उसका नाम उस महर्षि के नाम पर असित पड गया। श्री कृष्ण की प्रियाओं मे कालिंदी भी एक है। यह कालिंदी और कोई नही, यमुना ही है, इसलिए यमुना श्रीकृष्ण की लीला-भूमि में सर्वत्र बहती है।

यमुना नदी के दूसरे किनारे एक ऊँचे स्थान पर यमुना का छोटा-सा मंदिर है। हम पुल पार कर मंदिर की ओर आगे बढ़े। यहाँ कई गरम कुंड

है। सबसे नीचे वाले कुंड मे लोग नहा रहे थे। ऊपर वाले कुंड मे से होकर पानी यहाँ गिर रहा था। ऊपर के कुंड मे पानी इतना गरम है कि कोई उसमें नहीं नहा पाता। नीचे वाले में ठंडे पानी का स्रोत मिला दिया गया है जिससे पानी नहाने योग्य बन गया है। उसी कुंड मे हम भी नहाकर मंदिर की ओर चले। यमुना की मूर्ति खूब सजी थी। भीड़ नही के बराबर थी। अतः आराम से दर्शन, पूजा-पाठ किया। दान-दक्षिणा भी दी। यहाँ प्रसाद में आटे का हलवा बँटता है। प्रत्येक को दो-दो, तीन-तीन बार मिला। आधा पेट उसी से भर गया।

मंदिर के पीछे एक छोटा-सा कुंड था। उसमें पानी उबल रहा था। उबलने की आवाज दूर से ही सुनाई पड़ती थी। कुछ लोग उस पानी में रोटी पका रहे थे। कुछ लोग एक लोटे मे उस उबलते पानी को भरकर उसमे चाय की पत्तियाँ डालकर चाय बना रहे थे। जैसे हम पूरी को तेल या घी मे छोड़-कर निकाल लेते हैं उसी तरह रोटी पकाने वाले रोटी को उस कुंड मे छोड़ देते थे। वह पानी में डूबकर नीचे चली जाती थी। यह देख हम समझ बैठते कि रोटी शायद पानी मे गल गई होगी पर एक मिनट मे वह पककर हमारे देखते-देखते ऊपर आ जाती थी। रोटी पकाने वाले चिमटे से उसे निकाल रहे थे और दूसरी रोटी पकाने के लिए कुंड मे डाल रहे थे। मैं अपनी आँखो पर विश्वास न कर सका। एक रोटी उनसे माँगी और खाकर देखा कि रोटी खूब पक गई थी। कुछ लोग चावल और आलू एक कपड़े मे बाँधकर कुंड मे डुबो रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि इस तरह दस मिनट छोड़ देते हैं तो आलू और चावल पक जाते हैं। तुरत मैंने कपड़े के एक कोने में आधा सेर चावल और चार बड़े-बड़े आलू बांधकर कुंड मे पानी मे डुबो दिए। पंद्रह मिनट बाद कपड़े को ऊपर उठाकर और गाँठ खोलकर देखा। चावल खूब पककर पिच-पिच हो गया था। आलू भी पककर फट गए थे। गरम मसाला मिलाकर हम सबने पेट भर खाया और कुली और घोड़े के मालिकों को भी खाने को दिया।

कहा जाता है कि अग्निदेव ने कठिन तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप उन्हें दिग्पाल का पद मिला था। उसकी स्मृति में अब भी गरम पानी का कुंड मौजूद है जिसे तप्त कुंड के नाम से अभिहित किया जाता है। कुछ लोग इसे गौरग डिबिया भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ सिद्ध नामक तीर्थ है जहाँ यमराज ने कठिन तपस्या कर अपनी पदवी प्राप्त की थी। अतः आस्तिकों का विश्वास है कि यहाँ यमुना में नहाने से सब पाप धुल जाते है और तप्त कुंड में नहाने से समस्त पाप पुंज को अग्निदेव भस्म कर डालते हैं। साथ ही यम का पाश उन तक नहीं पहुँच पाता। कुंड की बगल में कई गरम

पानी के स्रोत है जिनका पानी निरंतर फुहारे की तरह उठता है और फिर गिरता रहता है। आधे घंटे तक हमने इन फुहारों के संगीत और नृत्य का आनंद उठाया। उसकी बगल में ही पंडा लोग बैठकर पिण्डदान एवं तर्पणादि करा रहे थे। मेरे बुजुर्ग मित्र ने भी अपने पितरों के लिए पिण्डदान और तर्पणादि किए।

फिर हम हनुमान मंदिर की ओर गए। स्वामी जी ने प्रसाद बाँटते हुए पूछा—"आप लोग कहाँ से आ रहे है ?"

"जी, मैसूर से।"

"क्या आपने कुछ खाया-पिया ?"

"जी हाँ।"

"कहाँ और कैसे ? यहाँ तो अभी तक कोई दुकान नही खुली है।"

"जी, हम चावल और आलू ले आए थे। कुंड मे पकाकर खा लिया।"

"आपको संकोच करने की कोई जरूरत नही। यदि चाहिए तो हम खिचड़ी बनाने के लिए सब सामान आपको दे देंगे। आप बहुत दूर से आए है। यहाँ अभी कोई व्यवस्था नही हो पाई है।"

"जी, बहुत धन्यवाद। हमे किसी प्रकार का संकोच नही है। खूब खा-पीकर आए है।"

फिर उनको प्रणाम कर जब हम नीचे उतर रहे थे तब बंगाली मित्र से भेंट हुई। उन्होंने भी मुझसे यही पूछा कि खाने के लिए आपने क्या किया। बाद में पता चला कि वे लोग बिना कुछ इंतजाम किए यहाँ आ गए थे। यहाँ दुकाने है ही नही, भूखो तड़पना पड़ता। आखिर स्वामीजी ने खिचड़ी बनाने के लिए चावल, दाल, मिर्च, नमक, बरतन और लकड़ी जुटाकर दिए। यदि वे सहायता न करते तो उन्हें भूखो जानकी चट्टी को लौटना पड़ता। उनसे विदा लेकर हम चल पड़े।

पानी बेहद ठंडा होने से हम यमुना मे नही नहा पाए, पानी से प्रेक्षण कर एक लोटे मे पानी भरकर टाँका लगाते ले चले। उस दिन हमारा पड़ाव जानकी चट्टी मे था। वहाँ पहुँचकर हमने किराए पर कमरा ले लिया। सवेरे हम सब पैदल ही हनुमान चट्टी होते हुए सयाना चट्टी के लिए चल पड़े। हनुमान चट्टी से सयाना चट्टी तक का पैदल रास्ता बड़ा खतरनाक था। घोड़े वालों ने अब पैदल का रास्ता छोड़ पहाड़ी पगडंडी का रास्ता पकड़ लिया था। उस ओर एक ही आदमी एक समय मे आ या जा सकता था। नीचे सैकडो फुट का गड्ढा और प्रचंड गति से बहने वाली यमुना ! पैर फिसले तो सीधे यमपुरी पहुँचेंगे। कभी-कभी यात्रियों को बैठकर चलना पड़ता और

कभी-कभी चट्टानों को पकड़कर। बीच-बीच मे कच्चे पुल भी मिल जाते है जो रस्सियो से बने हैं। इन पर भी एक समय मे एक ही व्यक्ति आ या जा सकता है। पुल झूला जैसा झूलता है, चलते समय हृदय धक्-धक् करने लगता है। सामान ले चलने वाले कुली ने हमारी बडी मदद की। अत. रास्ता तय करने में खास तकलीफ नहीं हुई।

यहाँ की पहाड़ी औरतें गोरी और सुंदर थी। उनके गालों पर अकृत्रिम लालिमा छाई हुई थी। यहाँ प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के दर्शन हुए। ये स्त्रियाँ बड़ी परिश्रमी है। पूछने पर पता चला कि उस सर्दी मे भी वे तडके ही पशुओं का चारा इकट्ठा करने पहाड़ों पर टोलियों मे निकल पडती हैं। बडी-बड़ी टोकरियो मे पत्तों का अबार ढोकर लाती है। जानवरो के मल-मूत्र मे उन्हे सड़ने देती हैं, वही खेत के लिए खाद बन जाता है।

यहाँ की स्त्रियों मे चाँदी के आभूषण पहनने का बहुत प्रचलन है। वे नाक में एक बुलाक पहनती है जो उनके विवाहित होने का परिचायक है। यात्रियो को देखकर वे प्राय: "यमुना मैया की जय" बोल उठती है। रास्ते भर यात्री भी यही नारा लगाते आते हैं और लौटते हुए यात्रियो से पूछते जाते है कि और कितनी दूर है।

उत्तराखड की नारी ने पर्वतराज हिमालय से दृढता ली। हरी भरी घाटियो से मोहकता ली, चचल वेगवती नदियो से अथक परिश्रम की गति प्राप्त की, मुक्त आकाश से उदारता ली, तभी वह पूर्ण पर्वतीय नारी बनी।

काले लहँगे पहने, कमर पर धोती का फेंटा कसे, हाथ में दँराती लिए, माथे पर लाल-लम्बा टीका, कमर तक झूलती वेणी, रंग-बिरगी फतूही पहने चाहे कुमाऊनी नारी हो अथवा काले परिधान के साथ लाल मूँगे की माला, कानो मे मूँगे के कर्णफूल, नाक में झूलती बुलाक वाली चाहे गढवाली नारी हो या काले रग के परिधान युक्त माथे पर सफेद रूमाल बाँधे स्वर्ण या रजत मस्तक पट्टिका से सुशोभित बड़ी-बड़ी नथों को झुलाती कर्मठ भोटिया नारी हो, किसी भी पर्वतीय नारी पर दृष्टि पड़ते ही उसकी सहज कर्मठता का बोध हो जाता है। वे कुसुम के समान कोमल और मोहक है, तो बज्र के समान कठोर भी है। अपनी अथक साधना के बल पर पर्वतो की पथरीली भूमि को शस्य-श्यामला बनाने का श्रेय इन्ही को है।

परिवार के लिए दूरस्थ जल स्रोतों से जल लाना, पशुधन की देखभाल, प्रकृति की वन-संपदा से पूर्ण इस धरती के जंगलों से घास या लकड़ी काटना आदि इनके दैनिक कार्य हैं। वह परिवार की आर्थिक व्यवस्था हँसते-हँसते सँभालती है। जीवन-निर्वाह कठोर है। धरती उपजाऊ नही है पर प्रकृति

की चुनौती को स्वीकार कर घर का भंडार अन्न से अन्नपूर्णाएँ ही भरती है।

खेतो मे खाद डालना, बीज बोना, निराई, गुडाई, कटाई, मडाई, खेतो से घर तक अनाज ढोने के कार्यों में व्यस्त पर्वतीय नारी के अथक परिश्रम को देख कर्मठता भी लज्जित होती है।

समस्त ऊनी कपडो, थुलमों, कबलों के अतिरिक्त मूल्यवान सुंदर कालीनों को यहाँ की भेड-बकरियों के पालक यायावर भोटियों की नारियाँ ही तैयार करती है।

जगल में घास या लकड़ी काटते हुए दूरस्थ पर्वत-घाटियाँ उनके मुग्ध गायन से गूंज उठती है। कोई भी मेला उनके सरस नृत्यों तथा गीतों से रंगीन हो उठता है। हुड़के की थाप के साथ निराई करते समय उनका परिश्रम द्विगुणित हो उठता है।

वे स्वभावतः कलाप्रिय है। किसी भी मगल पर्व पर घर की देहरी को चावल की सुंदर अल्पना से सजाना नहीं भूलती। वैवाहिक मंगल अवसरों पर घर की पुताई और सफाई के बाद उनके द्वार सजाने की कला देखकर विस्मय विमुग्ध हो जाना पड़ता है। बिना विधिवत् ज्ञान प्राप्ति के भी उनकी विलक्षण प्रतिभा मन को मोह लेती है।

साढ़े दस बजे हम सयाना चट्टी पहुँचे। सामान ले आने वाले कुली को रुपया देकर विदा किया। सामान घर से अपना सामान छुड़ा लिया। हम सीधे गंगोत्री जाने वाली बस पर जा बैठे। अभी दस सीटे खाली थी। अतः बस यात्रियो की प्रतीक्षा में खड़ी थी।

एक बज गया था। दो बजे के बाद गेट बंद हो जाना। अतः यात्रियों ने बस ले चलने को कहा, पर बस वाले बोले, "अभी और तीन सीटे भरने दीजिए या आप सब लोग मिलकर इन तीन सीटों का किराया दे दीजिए।" यात्री सवेरे से बैठे-बैठे ऊब गए थे। अतः एक दिन और वहाँ ठहरना कोई नही चाहता था। सबने मिलकर तीन सीटों का किराया दे दिया। बस चल पड़ी।

धारासू पहुँचकर जलपान किया। रात के साढ़े आठ बजे हम उत्तरकाशी पहुँचे। रात का पड़ाव वही था। सवेरे पाँच बजे बस पर आ जाने की सूचना देकर बस रुक गई। हम काली कमलीवाले बाबा जी की धर्मशाला में ठहर गए। यहां गर्मी अधिक थी। भोजनोपरांत हम बाहर ही सो गए। सवेरे चार बजे आँखें खुलीं। धर्मशाला के पिछवाड़े ही भागीरथी बह रही थी। सबने उसमे स्नान किया। बोरिया-बिस्तर बाँधकर बस-स्टाप की ओर रवाना हुए।

गंगोत्री

16 मई के सवेरे बस उत्तरकाशी से गंगोत्री की ओर चल पड़ी। भागीरथी के किनारे-किनारे बस जा रही थी। फेनिल धारावाली भागीरथी शोर मचाती, द्रुतगति से पत्थरों से टकराती हुई भागी जा रही थी। मनेरी, भटवारी, गंगनानी, सुखी, हर्सिल आदि होते हुए साढ़े दस बजे हम धराली पहुँचे। मनेरी मे भारत के एक नए तीर्थ का निर्माण हो रहा है। यहाँ भागीरथी का जल लंबी सुरंग द्वारा पर्वत की दूसरी ओर ले जाकर नीचे गहराई मे गिराया जाता है। इस कृत्रिम जल-प्रपात का प्रयोग विद्युत उत्पादन के लिए किया जा रहा है। यह योजना 'मनेरी माली जल विद्युत योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। आगे मार्ग में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी थीं अतः बस आगे नही जा पाई। बस ड्राइवर ने यात्रियो को यहाँ उतार दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि तेईस किलोमीटर पैदल जाना होगा। हम यमुनोत्री मे पैदल चलकर बहुत थक गए थे। यहाँ घोड़े या डोली की व्यवस्था नही थी। उसके होने पर भी हम उसमें जाने वाले नही थे। क्योंकि यमुनोत्री का कटु अनुभव अभी तक भूल न पाए थे। धराली मे ठहरकर दूसरे दिन सवेरे कूच करना चाहते थे।

अब गंगोत्री की यात्रा अपेक्षाकृत सुगम हो गई है। उत्तरकाशी से आगे पच्चासी किलोमीटर की दूरी पर स्थित लंका नामक स्थान तक बसें जाने लगी है। वहाँ से केवल तीन किलोमीटर की भैरवघाटी पार करनी पड़ती है—डेढ़ किलोमीटर उतार और डेढ़ किलोमीटर खड़ी चढ़ाई। उसके बाद गंगोत्री मंदिर तक नौ किलोमीटर फिर सीधी सड़क है। यहाँ कुछ उद्यमी व्यक्ति मोटर के विभिन्न हिस्से खोलकर ले जाते है और घाटी के उस पार उन्हें जोड़कर गाडी तैयार कर लेते है। इससे यात्रियो को मोटर मे बैठकर मंदिर तक जाने की सुविधा प्राप्त हो गई है।

औरतो ने गरम उप्पमा बनाया था। मैं अपने मित्र के साथ नाश्ता कर भागीरथी मे कपड़े धोने चल पड़ा। नहा-धोकर हमने भोजन किया ही था कि बस कंडक्टर ने हमे खुशखबरी सुनाई—लंका तक रास्ता साफ हो गया है। अतः दस मिनट के अंदर सबको बस मे आ जाना चाहिए।

यहाँ से लंका लगभग बारह किलोमीटर दूर है। यह सुनते ही हम खुशी से उछल पडे। न आव देखा न ताव। खुला हुआ सब सामान जैसे-तैसे बाँधकर पाँच मिनट मे बस पर जा बैठे। हम तो अगले दिन जाने के लिए सोच बैठे थे। अत: अनावश्यक सामान को यहाँ के सामान घर मे छोड़ नही पाए। बस चल पड़ी। हमारी बस पहली बस थी। उसके पीछे-पीछे सात और बसें भी आ गई। यद्यपि गगोत्री का मदिर 15 मई को ही खुल गया था, फिर भी यात्री बहुत कम सख्या मे आ पाए थे। वे सब पैदल ही चले थे। तीन किलोमीटर का फासला पार करते ही मुसीबत आ पड़ी। एक बहुत बडा चीड़ का घृक्ष बीच रास्ते मे पडा हुआ था। दस-पंद्रह कुली उसे रास्ते से हटाने का प्रयत्न कर रहे थे। आठों बसे रुक गई। हमारा बस ड्राइवर बड़ा उत्साही एव सेवाप्रिय लगता था। नीचे उतरकर बोला, "भाइयो! थोड़ा नीचे उतरकर अपना हाथ लगाइए। इस पेड़ को एक ओर सरका देंगे।" मैं सबसे पहले नीचे उतर पड़ा। मेरे उतरते ही पचास-साठ लोग अन्य बसों से भी उतर पड़े। पाँच मिनट मे हम सबने मिलकर पेड को सड़क के किनारे एक ओर सरका दिया, बस चल पड़ी। वहाँ काम करने वाले कुली भी आकर हमारे साथ बैठ गए। पूछने पर मालूम हुआ कि ये सब आस-पास के पहाडी गाँवों के रहने वाले है। वे एक महीने से रास्ता साफ करने के काम में जुटे हुए है। फिर भी काम पूरा नही हो पाया है। बस अचानक फिर रुक गई। हमने देखा कि एक बड़ी चट्टान बीच रास्ते मे पड़ी हुई है। मजदूरों ने बताया कि कल तक वह चट्टान वहाँ नही थी। शायद कल रात को ही लुढ़क पडी है। हम सब नीचे उतर पडे। लकडियों की सहायता से चट्टान को पहाडी रास्ते से नीचे ढकेल दिया। उसके लुढकते ही कई पेड़ टूटकर नीचे जा गिरे। हम सब बस में बैठ गए। देवदार वृक्षों से सारा पहाड सुशोभित था। पत्तों के बीच सूर्य की रश्मियाँ छनकर इंद्रधनुषी रंग बिखेर रही थी।

आधा किलोमीटर जाते ही हमने दूर मे देखा कि दैत्याकार चट्टान बीच रास्ते मे पड़ी हुई है। बीस कुली उसे हटाने के काम में जुटे हुए है। डेनामाइट द्वारा चट्टान के दो टुकड़े तो हो गए थे पर उसे हटाना बड़ा मुश्किल था। छोटे-छोटे चीड के कई वृक्षो को काटकर उनकी सहायता से सबने मिलकर हटाने का प्रयत्न किया। इसमे पचासो यात्री शामिल हुए। अब सातो बसो के ड्राइवर हमारे बस ड्राइवर को कोसने लगे। बोले, "तुम्हारी बात मानकर हम सब बस ले आए। अब बताओ तुम उसे कैसे हटाओगे।"

हमारा बस ड्राइवर मुस्कराकर बोला, "हिम्मत न हारो। हम प्रयत्न करेंगे। आगे गगा मैया की मर्जी।"

फिर बस के अंदर से उसने जैक निकाला जो बस को ऊपर उठाने के काम मे आता है। जैक की सहायता से चट्टान ऊपर उठती गई और हम नीचे मोटी लकड़ियाँ डालते गए। इस प्रकार आधे घंटे में चट्टान को नीचे ढकेलने में हम समर्थ हुए।

बस आगे बढ़ी पर आधा फर्लांग जाते ही फिर रुक गई। सामने का रास्ता बिलकुल टूट गया था, वहाँ कुली पत्थर जोड़-जोड़कर रास्ता ठीक कर रहे थे। तीन-चार घंटे रुकने पर भी रास्ता ठीक होने की उम्मीद न थी। सब ड्राइवर हमारे ड्राइवर की खिल्लियाँ उड़ा रहे थे। हमारी स्थिति ऐसी हो गई थी कि धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। लौटना भी बड़ा मुश्किल था। बस को मोड़ने के लिए यहाँ जगह न थी। यात्रियों के लिए ठहरने की भी कोई व्यवस्था न थी। इसी बीच जीप में तहसीलदार साहब और कलेक्टर साहब गंगोत्री से लौट रहे थे। वे बोले, "यहाँ तक आने की अनुमति किसने दी ? किसके आदेश से बस ले आए ? यात्रियों को मुसीबत मे क्यों डाल दिया? आगे का रास्ता अभी ठीक नहीं हुआ है। उसे ठीक करने में कम-से-कम पंद्रह दिन और लग जाएँगे। इसलिए किसी-न-किसी तरह बस को वापस ले जाओ। यात्रियों से कह दो कि वे सब पैदल ही गंगोत्री जाएँ।"

दोनों जीप मे बैठकर चले गए। यात्री लोग पैदल जाने के लिए तैयार हो गए। कोई वापस धराली नहीं जाना चाहता था। अधिकतर लोग हमारे देखते-देखते चल पड़े क्योंकि उनके पास सामान कम था। मैंने कुली को पुकारा। सामान का वजन कुल 150 किलो था। उसे उठा ले चलने के लिए कम-से-कम दो कुली चाहिए। दो कुली आए। वे दोनों इस मौके का फायदा उठाना चाहते थे। दो सौ रुपए से कम में जाने को तैयार न थे। मैं अपनी बेवकूफी पर पछताने लगा।

यदि धराली मे ही हम ये सामान छोड़ आए होते तो यह परेशानी नहीं झेलनी पड़ती। निश्चय किया कि मेरे बुजुर्ग मित्र और उनकी पत्नी के साथ मेरी पत्नी भी पैदल यहाँ से लंका तक जाएँगे। केवल पैंतीस किलो सामान कुली ले जाएगा, जो नितांत आवश्यक है। मैं बाकी सामान लेकर इसी बस से धराली वापस जाऊँगा और सामान घर मे छोड़कर उनसे लंका मे आ मिलूँगा। मेरे मित्र को भी यह सलाह पसंद आई। अब चार बज चुके थे। लंका सात किलोमीटर दूर थी। कम-से-कम सात बजे तक उनको लंका पहुँच जाने की उम्मीद थी। वे कुली को लेकर साथ चल पड़े। मैं बाकी सामान लेकर बस मे बैठ गया।

सब बसों को घुमाकर धराली ले चलने में दो घंटे लगे। हमारा ड्राइवर विशेष कुशल था, उसी ने सब बसों को घुमाया। बाकी ड्राइवर हक्के-बक्के रह

गए। आखिर हम शाम के छह बजे धराली पहुँचे। सब सामान अमानती घर में छोड़ रसीद ले नीचे उतरा ही था कि जोर से पानी बरसना शुरू हो गया। एक घंटे तक पानी बरसता रहा। सिवाय एक कंबल के मेरे पास कुछ नहीं था। तब तक और चार बसें आ गई थीं। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ समुचित व्यवस्था नहीं थी। यात्रियों को भारी कष्ट भोगना पड़ा। कुछ लोग बस में ही पड़े रहे। मैं सोचने लगा कि बड़ा अच्छा हुआ हमारे लोग लंका पहुँच गए अन्यथा उन्हें भी यह कष्ट भोगना पड़ता।

पानी बंद होते ही मैं लंका की ओर जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय मेरे साथ चलने के लिए कोई तैयार न था। जब मैं अकेला जाने के लिए रवाना हुआ तब किसी ने आकर कहा, "बाबू साहब, रात के समय चीता, शेर, हाथी आदि खूँखार जानवर निकल पड़ते हैं। इस जंगल के रास्ते में हम आपको इस समय जाने नहीं देंगे।"

मेरे लिए कोई चारा न था। मैं रुक गया। अच्छा ही हुआ क्योंकि फिर आधे घंटे में मूसलाधार पानी बरसने लगा। पानी रात भर बरसता रहा। यदि मैं गया होता तो जंगल के रास्ते में फँस जाता। यहाँ कोई स्थान ठहरने के लिए नहीं था। चाय की दुकान में बैठकर लोगों की बातें सुनता रहा। फिर रात के नौ बजे गरम पूड़ी खाकर दुकान पर ही बैठा रहा। दस बजे दुकान बंद होने लगी। दुकान में रात भर ठहरने के लिए अनुमति माँगी। मुझे वहाँ सोने के लिए अनुमति मिल गई और उसने बिस्तर की भी व्यवस्था कर दी।

अंगीठी जलती रही। मैं एक ओर नरम-नरम बिस्तर बिछाकर लेट गया। पर मुझे नींद आई नहीं। आखिर मैं चार बजे उठ पड़ा। लड़का अंगीठी जला आग तापने बैठा हुआ था। धन्यवाद के साथ उसे बीस रुपए देने चाहे पर उसने नहीं लिए। मैं लंका की ओर द्रुतगति से चल पड़ा। भाग्यवश पानी बरसना बंद हो गया था।

पाँच किलोमीटर चलने के बाद एक जगह चाय मिली। साढ़े छह बजे मैं लंका पहुँच गया। मेरी पत्नी और मित्र परिवार अभी सो रहे थे। मुझे देख कर आश्चर्यचकित हो उठे। वे रात में बड़ी देर तक बिना खाए मेरी प्रतीक्षा में बैठे रहे थे। बाद में यहाँ के लोगों ने बताया कि आज वे नहीं आ सकते। कल सवेरे आ जाएँगे। मुझे देख कुली लोग पूछ बैठे, "साहब आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"धराली से।"

"साहब, आप हँसी-मजाक तो नहीं कर रहे है ? सच बोलिए।"

"मैं झूठ क्यों बोलूँ ?"

"कितने बजे वहाँ से रवाना हुए ?"

"ठीक चार बजे।"

"चार बजे ? क्या आप अकेले आए ? डर नहीं लगा ?"

"अरे भाई, इसमे डरने की बात क्या है ?"

"साहब आप बहुत तेज चलते है। ढाई घटे में बारह किलोमीटर पार कर आए हैं। हम पहाड़ी लोग भी इतनी जल्दी नहीं आ सकते। सुनसान जगह मे आने से आपको डर न लगा ?"

"यहाँ रास्ता तो बड़ा अच्छा है। केवल एक जगह पर चढ़ाई थी। यदि वह न होता तो दो घटे में आसानी से आ सकता था।"

"आप तो तूफान मेल है।"

असल में मेरे पैरो में पर लगे थे अपनो से मिलने के लिए। सब लोग जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धो, चाय पी गगोत्री की ओर रवाना हुए। वहाँ से गगोत्री बारह किलोमीटर है। यहाँ से आगे चलने के लिए कोई कुली तैयार नहीं हुआ। अतः हम लोगों ने अपना सामान स्वय उठा लिया और चल पड़े। हार मानना नही चाहते थे।

लंका नामक स्थान के आगे भैरों घाटी का रास्ता तीन किलोमीटर का है। डेढ़ किलोमीटर उतराई है और डेढ किलोमीटर बड़ी कठिन चढ़ाई। एक-एक पग बढ़ाना कठिन होता है। यह घाटी बड़ी सुहावनी है। दैत्याकार चट्टानों से टकराती, बल खाती भागीरथी बड़ी सुंदर दीख पड़ती है। एक-दो जगह पर लोहे के पुल बने है। हम सब थक गए थे अतः बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे थे। केवल बारह किलोमीटर चलकर गगोत्री पहुँचने मे पाँच घटे लग गए। मैं तो लगातार सवेरे चार बजे से तेइस किलोमीटर चल चुका था। सारे शरीर मे दर्द हो रहा था।

गगोत्री मे इस समय धूप निकली हुई थी। हम सीधे धर्मशाला की खोज में गए। आखिर पंडाजी की सहायता से हमें ठहरने के लिए कमरा, ओढ़ने के लिए रजाइयाँ और फर्श पर बिछाने के लिए गद्दे किराए पर मिल गए। हम भागीरथी मे नहाकर थकावट मिटाना चाहते थे, अतः कपड़ा लेकर नदी की ओर चले। इसी बीच पानी जोर से बरसने लगा। आधे घटे तक वर्षा होती रही। ठंड शुरू हो गई। अब नदी में नहाना तो दूर रहा मुँह भी न धो सके। पंडाजी ने एक बाल्टी गरम पानी दिया। उसी से हाथ मुँह धो, गरम खाना खाकर, बिस्तर मे घुस पड़े। मुझे बुखार-सा महसूस होने लगा। गरम चाय के साथ दवा की एक टिकिया लेकर लेट गया। पाँच बजे उठा तो अपने को ठीक पाया।

मै अपने मित्र के साथ साधु-सतों, तपस्वियो तथा संन्यासियों के दर्शन करने आश्रमो की ओर निकल पड़ा। आश्रम सबके सब बंद थे। पूछने पर मालूम

हुआ कि वे सन्यासी-तपस्वी छह महीने यहाँ नहीं रहते। तीन-चार दिनों मे वापस आ जाएँगे। हम निराश हो लौटना ही चाहते थे कि एक दरवाजा आश्रम का खुला देखा। हम सीधे अदर गए। स्वामी जी अदर बैठे हुए थे। वे हमारा स्वागत करते हुए बोले, "क्या मैं आपके लिए चाय बना दूं ?"

"जी नही, अभी-अभी हम चाय पीकर आए है।"

"तो बैठिए।"

हम आराम से बैठ गए। कमरा स्वच्छ था। मालूम हुआ कि स्वामी जी साल भर यही रहते है। वे दिन मे एक ही बार खाते है। वेद-पुराण-पठन, ध्यान व तप में अपना समय बिताते हैं। जो संन्यासी अब आने वाले हैं वे उनके लिए खाद्य सामग्री जुटाकर लाएँगे।

मैंने उनसे पूछा, "स्वामी जी, जब छह महीने कोई नही रहता, तब बिना किसी से बोले आप कैसे रह लेते है ?"

"इस अवधि मे मैं मौनव्रत धारण कर लेता हूँ।"

"बिना किसी साथी के रहना क्या आपको खलता नहीं ?"

"मै अकेला कब हूँ ? परमात्मा तो मेरे साथ है। साथ ही मेरे ये ग्रंथ चौबीसों घंटे मेरे साथ रहते है।" यह कहते हुए अपनी किताबों की ओर इशारा किया।

कुछ क्षण बाद स्वामी जी ने पूछा, "आप किस उद्देश्य से यह यात्रा करने आए हैं ?"

मेरे मित्र चुप बैठे थे। मैं बोला, "प्रकृति की गोदी में चंद दिन बिताने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा थी। उसे पूरा करने इधर आया हूँ।"

"आप क्या धन-दौलत की प्राप्ति या मोक्ष की इच्छा से नही आए हैं ?"

"यात्रा करने से इनकी प्राप्ति होगी, इस पर मेरा विश्वास नहीं हैं। मैं कर्म मार्ग पर आस्था रखने वाला अध्यापक हूँ। मेरे लिए कर्म ही सब कुछ है।"

"क्या आप भगवान् और भगवती के दर्शन करने नहीं आए हैं ?"

"जी नही। वे तो हर कही रहते हैं। उन्हें देखने के लिए इतनी दूर आने की क्या आवश्यकता है ? मैं सिर्फ़ प्रकृति के विविध रूपों का उपासक हूँ। घटो प्रकृति मे बैठ कर आनंद लूटता हूँ। लोग कहते है मेरे ऊपर सनक सवार है पर मैं उनकी परवाह नहीं करता।"

"हाँ, प्रकृति भी तो भगवान् का ही रूप है। उसमें आनंद अवश्य मिल जाता है।"

फिर आध्यात्मिक विषय पर एक घटे तक चर्चा चली। भक्ति की विभिन्न पद्धतियों एवं आचरण पक्ष की एकता तथा भगवान् के विभिन्न रूपों की एकता पर काफ़ी बातें हुईं। जीवन मुक्त दशा, निष्काम कर्म, स्थित प्रज्ञ की स्थिति, ब्रह्मानंद का स्वरूप, योगदर्शन आदि विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान

हुआ। हमारे विचारों से वे प्रसन्न हुए। बोले, "आप सांसारिक जीवन बिताते हुए साधना पथ के पथिक हैं।"

"आप मुझे लज्जित न कीजिए, आशीर्वाद दीजिए।" मैंने सकुचाते हुए कहा।

"मैं कौन हूँ आशीर्वाद देने वाला और आप कौन है आशीर्वाद लेने वाले ? जब हम दोनों मे वह परमात्मा बसा हुआ है तब उसका आशीर्वाद हमेशा बना हुआ है।"

उन्होंने हमे अपने चरण छूने की अनुमति नहीं दी। बोले, "यहाँ लोग धन-दौलत प्राप्त करने और संकट निवारणार्थ अपने सारे सांसारिक झंझटों को साथ ले आते है और हमारे भगवद् चिन्तन मे बाधा डालते है। मैं तो आपसे अत्यत प्रसन्न हूँ। हमने भगवत् चिन्तन मे डेढ घटे का समय सदुपयोग किया। यदि फुरसत हो तो कल भी आइए।"

"कल हम गोमुख की ओर जाने के लिए सोच रहे हैं। यहाँ नहीं आ सकेंगे। लौटने के बाद हम आपके दर्शन करेंगे।"

हम यहाँ से सीधे मंदिर पहुँचे। आरती हो रही थी। "जय गगे" का मधुर गीत गूँज रहा था। प्रसाद लेकर हम कमरे मे लौट आए।

सवेरे साढ़े सात बजे जगे। फिर गगा में नहाने निकले। अभी धूप निकल रही थी। पानी मे फिर भी उतरकर नहीं नहा पाए क्योंकि बड़ी ठड थी। लोटे से पानी लेकर जल्दी सिर पर उड़ेल लिया। अनुभव हुआ कि मानो सारे बदन मे बिजली छू गई हो। मेरे लिए तो यह अनुभव नया न था, पर मेरी पत्नी और मित्रों के लिए यह नया अनुभव था। वहाँ बहुत से लोग ठंड से डरकर नहीं नहाते। केवल आचमन और प्रोक्षण कर, संतोष कर लेते है।

गंगोत्री अर्थात् गंगा उतरी। यहाँ गगा स्वर्ग से नीचे उतरी। भागीरथ ने उसे नीचे उतारा था। कहा जाता है कि पुराने जमाने में सगर नामक एक सम्राट थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। सर्वलक्षण संपन्न एक सुंदर घोड़े को सजाकर अश्वशाला में रखा गया था। दूसरे दिन उसे सेना के साथ दिग्विजय के लिए छोड़ा जाना था। राजा सगर के इस प्रताप से इद्र भयभीत हो उठा। अतः वह अश्वशाला मे बँधे हुए अश्व को चुराकर ले गया और कपिल की गुफा मे बाँध आया।

दूसरे दिन घोड़े को अश्वशाला मे न देखकर राजा चिन्तित हुए। उसे ढूंढने के लिए उन्होने अपने साठ हजार पुत्रों को भेजा। राजकुमारों ने सारी पृथ्वी छान डाली। फिर समुद्र की छान-बीन की, पर घोड़ा न मिला। समुद्र को और गहरा खोद डाला। इसी से समुद्र का नाम सागर पड़ा है। अतत: पूर्व और उत्तर के कोने मे एक गुफा मिली जो पूर्ण रूप से ढकी हुई थी।

उसे भी खोद कर देखा। अंदर एक विशाल मैदान था। एक पेड़ के नीचे एक क्षीणकाय मुनि तपस्या कर रहे थे। उनसे थोड़ी दूर आगे एक बरगद का पेड़ था। उसके तने से वह घोड़ा बँधा था। राजकुमार उस मुनि को ही चोर समझ कर मारने दौड़ पड़े। मुनिवर की समाधि टूटी। आँखें खुली। आँखों से तेज निकला और उस तेज से साठ हजार राजकुमार जलकर राख की ढेरी बन गए।

राजकुमारों के न लौटने पर राजा सगर ने अपने बेटों को ढूँढ़ लाने के लिए अपने पोते अंशुमान को भेजा। वह उन्हें ढूँढते हुए कपिल मुनि के आश्रम मे पहुँचा। उसने अपने सविनय आचरण द्वारा कपिल मुनि को प्रसन्न किया और भस्म हुए सगर पुत्रों के उद्धार का उपाय पूछा। कपिल मुनि ने कहा, "स्वर्ग से गंगा जी को धरती पर लाने तथा गंगाजल के स्पर्श से उनका उद्धार होगा। गंगा विष्णु के पद नख से निकल कर ब्रह्मा के कमंडल मे वास करती है। अत: गगा को उतारने के लिए तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करना होगा।

अंशुमान तप करने लगे। तप से अपने शरीर को गला डाला पर ब्रह्मा प्रसन्न न हुए। तदुपरांत अंशुमान का बेटा दिलीप अपने पिताजी की मनोकामना पूर्ण करने के लिए तप करने लगा। तप की आँच मे उसका शरीर भी गल गया। इसपर उसके पुत्र भगीरथ ने तपस्या आरंभ की। उनके अखंड तप से इंद्र काँप उठा। उनका तप भंग करने के लिए इंद्र ने अनेक प्रयत्न किए पर भगीरथ नही डिगे। भगीरथ की तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए। इसपर भगीरथ ने ब्रह्मा से गंगा को धरती पर भेजने का वर माँगा। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दे दिया। पर धरती पर गंगा के वेग को सभालने की क्षमता केवल भगवान् शकर में ही थी अन्यथा गगा पृथ्वी को चीरकर पाताल लोक मे पहुँच जाती।

अत: भगीरथ भगवान् शकर की तपस्या करने लगे। भगवान् शकर प्रसन्न हुए। वे गगा को अपनी जटाओ मे संभाल कर धीरे-धीरे उसे नीचे उतारने के लिए तैयार हो गए। ब्रह्मा ने गगा को अपने कमडल से छोड़ा। उस वेगवती धारा को शिवजी ने अपनी जटाओं मे रोक लिया। फिर धीरे-धीरे उसे नीचे उतारा। गगा भगीरथ से प्रसन्न हुई और बोली, "मै आज से अपना नाम भागीरथी रख लेती हूँ, क्योंकि तुम्हारे तपोबल से मै नीचे आई। अब मुझे आगे का मार्ग दिखाओ।"

तब से इस जगह का नाम गगोत्तरी या गंगोत्री पड़ा। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 3,049 मीटर है। भगीरथ रथ पर चढ़कर मार्ग दिखाते गए और गंगा पीछे-पीछे चलती गई। मुनि की गुफा में साठ हजार सगरपुत्रों की राख की ढेरी पडी थी। गगा के स्पर्श से उनका उद्धार हुआ। वे सीधे स्वर्ग पहुँचे। गगा आगे बढती हुई सागर से जा मिली।

पहले यहाँ गंगा जी का मंदिर काष्ठ से निर्मित था। बाद मे अठारहवी शताब्दी मे अमरसिंह थाप्पा तथा जयपुर के राजा ने उसका जीर्णोद्धार कर पत्थर से मदिर का निर्माण कराया। मदिर छोटा है। गर्भगृह मे गंगा सिहासन पर बैठी है। एक हाथ में कमल है तो दूसरे हाथ मे कलश, तीसरे हाथ से भक्तो को अभयदान देती है और चौथा हाथ जाँघ पर टिका हुआ है। यहाँ लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, जाह्नवी, यमुना, सरस्वती आदि देवियों की मूर्तियाँ भी है। पूजाकाल मे आदि शंकराचार्य की मूर्ति है जो रूद्राक्ष से सुशोभित है। पूजाकाल में आदि शकराचार्य रचित गंगाष्टक स्तोत्र का पाठ आज भी होता है। यहाँ के पुजारी इसी इलाके के हैं। गंगा-मंदिर के निकट ही भागीरथी के किनारे भगीरथ का एक छोटा मंदिर है। इस स्थान को भागीरथी शिला भी कहते है। मान्यता है कि यहीं बैठकर भगीरथ ने तप किया था। गणेश मंदिर, हनुमान मंदिर और लक्ष्मी नारायण मदिर भी देखने लायक है। यहाँ पहाडी नदी भागीरथी इतने वेग से पत्थरो पर गिरती हैं कि शिलाओं में अनेक सुन्दर आकृतियाँ उभर आई हैं जिन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो किसी कुशल शिल्पी ने उन्हे तराश कर यह सुघडता प्रदान की हो।

यहाँ भी शंकर भगवान् को पति के रूप में पाने के लिए गौरी पार्वती की तपस्या की कथा प्रचलित है। यहाँ भी एक तप्त कुंड है।

पुराणों के अनुसार गंगा हिमवान और मैना की पुत्री तथा उमा की बहन मानी जाती है। वे गागेय की माता भी हैं। महाभारत के अनुसार गंगा शांतनु महाराज से शादी कर भीष्म की माता बनी।

गगा के किनारे-किनारे लगभग एक किलो मीटर चलने पर "पटांगना" नामक जगह मिलती है। कहा जाता है कि पांडवों ने स्वर्गारोहण करते समय यहाँ यज्ञ किया था। सहस्र धारा मे गगा का जलप्रपात मनोहर है।

गंगा हमारी भावात्मक एकता की प्रतीक है। हम चाहे दक्षिण में हों चाहे उत्तर में, नहाते समय इस श्लोक को हर कोई दुहराता है :

"जम्बू द्वीपे, भरत खडे,
उत्तरा खडे, पवित्र गंगा तीरे।"

"गगे च यमुने चैव गोदावरी, सरस्वती नर्मदे सिंधु,
कावेरी, जलेस्मि न सन्निधि कुरु ॥"

लोग सुदूर दक्षिण स्थित रामेश्वरम से माटी लाकर गंगा में विसर्जित करते है और यहाँ से गगा जल ले जाकर रामेश्वरम के शिवलिंग का अभिषेक करते हैं। पुराने जमाने से ही हमारे पूर्वजों ने इन प्रथाओं के द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि भारत अखंड है।

बारह बजे तक अन्य कई दर्शनीय स्थानो को देखकर हम अपने कमरे की ओर आ ही रहे थे कि काले-काले बादल छा गए। ज़ोर से पानी बरसने लगा और लगातार शाम तक पानी बरसता रहा। अत: हम बाहर न जा पाए।

गगोत्री के सभी दर्शनीय स्थानो को यदि हम देखना ही चाहे तो तीन-चार दिन यहाँ रुकना पड़ जाएगा। यह हमारे लिए सभव न था। अत: हमने गोमुख की ओर जाने की योजना बना ली।

दूसरे दिन सवेरे गोमुख की ओर रवाना हुए। उन्नीस किलोमीटर लंबा मार्ग अत्यत कष्टकर एव खतरनाक है। हमने अपने साथ एक मार्गदर्शक लिया। गंगोत्री से गोमुख जाने की पगडंडी पहाडी घाटियो से होकर जाती है। रास्ते में अनेक छोटे-छोटे झरने मिलते है। कहीं उन पर पुल बने है तो कहीं पानी में उतरकर उन्हे पार करना पड़ता है। रास्ते भर रग-बिरगे पहाडी फूलों एवं वनस्पतियों के दर्शन होते है। इनकी महक में एक विचित्र प्रकार की मादकता पाई जाती है।

गंगोत्री से लगभग दस किलोमीटर चलने पर हम चीड़वासा पहुँचे, जहाँ चीड़ वृक्षो का सुरम्य वन है। यहाँ सरकार द्वारा निर्मित विश्राम गृह है। यात्री यहाँ खाना पकाकर, रातभर विश्राम कर आगे बढ़ते हैं। इसके आगे तीन किलोमीटर चलने पर भोजवासा नामक जगह मिलती है। यहाँ भुर्ज वृक्षो की अधिकता है। यहाँ एक साधु मिले। वे यात्रियो को ठहरने के लिए स्थान एवं खाने के लिए खिचड़ी प्रदान करते है। भुर्ज वृक्षो की ऐतिहासिक प्रसिद्धि सब जानते ही है। इसकी हरी लकड़ी भी खूब जलती है।

प्राचीन काल में ग्रथों का तथा अन्य प्रकार का लेखन कार्य इन भोज पत्रों पर ही होता था। हम भागीरथी के किनारे-किनारे जा रहे थे। कहीं-कहीं तो हमे स्वय मार्ग बनाकर चलना पड़ता था। मार्ग दर्शन के लिए रास्ते भर पत्थर गाड़े गए है। अब हम बर्फ़ पर चलने लगे थे। हम लोहे की पैनी नोक वाली लाठी के सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। मीलो बर्फ़—दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे, नीचे-ऊपर सब दिशाओं में सब ओर बर्फ़ ही बर्फ़। हमें ऐसा अनुभव हुआ कि हम बर्फ़ के समुद्र में खो गए हैं। कितना सुहावना पर साथ ही कितना भयावह! कभी-कभी घुटनो तक पैर बर्फ मे धँस जाता था। तब गाइड हमारी सहायता कर हमे ऊपर उठा लेता था। बीच-बीच में हलकी वर्षा हुई। यदि भारी हिमपात होता तो हमारे प्राणो के लिए संकट उत्पन्न हो जाता। रास्ते मे बर्फ की चट्टानें गिर रही थीं। हमें सावधानी से देख-देख कर कदम बढ़ाना पड़ता।

यहाँ की यात्रा केवल स्वस्थ व्यक्ति ही कर सकते है। यहाँ एक चुनौती है। सारे शरीर मे गरम कपड़े पहनने पर भी ठड हड्डियो को कंपा रही थी।

अपने साथ हम दो दिन के लिए ब्रेड और जैम ले गए थे। यहाँ जहरीले मच्छर और मक्खियाँ बड़ी संख्या में पाई जाती हैं जिनके काटने से सूजन आ जाती है। कभी-कभी बुखार भी आ जाता है। उनसे बचने के लिए मच्छरदानी, टिंचर-आयोडीन तथा अन्य दवाइयाँ साथ ले गए थे।

सामान्यतः मई महीने में गोमुख की यात्रा पर लोग नहीं जाते। स्त्रियों को साथ लेकर जाना तो और भी खतरनाक है। गंगोत्री में ही कई लोगों ने कहा था कि यदि गोमुख ही जाना चाहते हैं तो औरतों को यहाँ छोड़कर आप मर्द लोग चले आइए। पर उनको यहाँ छोड़कर जाते कैसे? गाइड ने भी यही कहा था कि औरतों का चलना बड़ा मुश्किल है। पर औरतों ने हठ किया कि हम औरतें मर्दों से कुछ कम नहीं। जब यात्रा के लिए साथ आए हैं तब इस तरह बीच में छोड़कर जाना ठीक नहीं है। उन्हें छोड़कर चलना हमें भी खला था। अतः सब चल पड़े थे। किन्तु बीच रास्ते में उनको अनुभव हुआ कि यदि गंगोत्री में ही रुक जाते तो अच्छा होता।

लगभग तीन बजे हम ऐसी जगह पहुँचे जहाँ से एक आश्रम दिखाई देने लगा। हमें आते देख वहाँ के स्वामी जी बाहर निकल आए। वे बोले, "आप लोगों को इस महीने में स्त्रियों के साथ यहाँ नहीं आना चाहिए था। कभी-कभी पहाड़ के पहाड़ नीचे सरक पड़ते हैं। मार्ग कई दिनों के लिए बंद हो जाता है। यदि जोरों से हिमपात हुआ तो यात्री उसमें फँस जाते हैं।"

वे हमें अंदर ले गए। कोयला जलाकर तापने के लिए दिया। गरम-गरम चाय पिलाई। आधे घंटे में खिचड़ी भी तैयार हो गई। पूछने पर मालूम हुआ कि वे साल भर यहीं रहते हैं। साल भर की खाद्य सामग्री अगले महीने तक उनको मिल जाएगी। दो संन्यासी गंगोत्री के बंद होते ही यहाँ से नीचे चले गए हैं। वे अब पंद्रह दिनों में लौट आएँगे। स्वामी जी के व्यवहार में स्नेह था, वात्सल्य था और वाणी में अपार प्रेम। हमें ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो स्वयं गंगा माई स्वामी जी का रूप धारण कर हमारे ऊपर अनुग्रह कर रही है। रात हमने वहीं काटी।

यहाँ से गोमुख लगभग 5 किलोमीटर दूर है। सवेरे हम गोमुख की ओर रवाना हुए। बीच रास्ते में हमें न तो ठहरने के लिए कोई स्थान मिला और न खाने के लिए कुछ सामग्री। पूरा रास्ता ऊबड़खाबड़ है। गोमुख में भी ठहरने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। अतः यात्रियों को दो-तीन घंटे ठहर कर तुरंत चीड़वाला या भोजवाला वापस आ जाना पड़ता है।

गंगोत्री से गोमुख तक के रास्ते में भागीरथी में कई नदियों एवं झरनों के संगम होते हैं। गंगोत्री एक विशाल हिमनद है, जिसके भीतर से भागीरथी की अंतर्धारा गोमुख में प्रथम बार प्रकट होती है। गोमुख स्थल गाय के मुख

जैसा दीख पडता है । यहाँ तक कि गाय के नथुने की भाँति मध्य में काला विवर और उसके चारो ओर श्वेत नासिका की आकृति स्पष्ट प्रतीत होती है । इसीलिए इसका नाम गोमुख पड़ गया है । गगा के स्रोत के ऊपर चलने के लिए बाईं ओर से एक रास्ता है । इस मार्ग पर चलने पर तपोवन और नंदनवन के मैदानों को देखा जा सकता है । कहा जाता है कि इन जगहों पर साधु-सन्यासी तपस्या करते है । यहाँ जाने के लिए सरकार से अनुमति प्राप्त कर लेनी चाहिए । यहाँ अचानक हिम चट्टाने खिसकती रहती है और पानी मे भी हिम चट्टानों के तैरते हुए सुन्दर दृश्य देखने में आते है ।

गोमुख से पहाड-पहाड़ होते हुए पैदल बदरी नारायण जाने के लिए लग-भग 56 किलोमीटर का रास्ता तय करना पड़ता है । यह रास्ता इतना कठिन है कि मृत्युमय रहित साधु-संत या भारत की सीमा रक्षा करने वाले कर्मठ जवान ही इस रास्ते से जाते है । लोगो से पता चला कि स्वामी तपोवन महाराज इस रास्ते से कई बार बदरीनाथ हो आए है । उनके शिष्य स्वामी सुन्दरानद जी गंगोत्री में स्वामी तपोवन महाराज की कुटी में निवास करते है । उनसे उस रास्ते के सबध में कई सूचनाएँ प्राप्त हुईं । ये भी पहाड़ पर चढ़ने की कला मे प्रवीण हैं । कई जगहो के फोटो उन्होने दिखाए । उन्होने कहा कि वे आठ बार इस रास्ते से बदरीनाथ हो आए हैं । वे गगोत्री, रक्तवर्णा, चतुरंगी, नंदनवन, वासुकि, कालिन्दी घाट, केशवप्रयाग, माना गाँव होते हुए बदरीनाथ पहुँचे थे । इस मार्ग का नाम है देव मार्ग । उन्होने यह भी बताया था कि इस मार्ग पर चलने के लिए सशक्त और सुदृढ शरीर की आवश्यकता है । आवश्यक चीजे—गरम कपड़े, तंबू, पकाकर खाने की आवश्यक वस्तुएँ स्वय अपने कंधो पर उठा कर ले जाना पडता है । प्राचीन काल में हमारे बुजुर्ग इसी रास्ते से बदरी, केदार और यमुनोत्री जाया करते थे । पर आजकल लाखों में कोई एक जाता है ।

गोमुख गुफा की भी एक बड़ी मार्मिक और प्रेरक कहानी है । कहा जाता है कि पर्वत पर हिमवत अपनी रूपवती रानी मैना और छोटी सी प्यारी कन्या गंगा के साथ रहते थे । अपने पिता के राज्य में घूमते हुए एक दिन गगा ने बर्फ़ की एक ऐसी गुफा देखी जैसी उसने पहले कभी न देखी थी । उसकी चमकती हुई दीवालों मे लबी-लबी हिम वर्तिकाएँ लटकी थी । बर्फ़ के खंभों ने उसकी छत को थाम रखा था । तभी सूर्य की एक किरण गुफा की दीवालों पर चमक उठी और गगा ने देखा कि बर्फ पर एक इंद्रधनुष बन गया था । यह दृश्य उसे इतना अच्छा लगा कि उसने मन ही मन कहा कि यही मेरा राज पाट है । अब मैं यही रहूँगी । राजा और रानी ने कई दिनों तक अपनी कन्या की प्रतीक्षा की, फिर उसे ढूंढ़ते वे उसी गुफा के पास

आए। जब उन्होंने राजकुमारी को अकेली बड़ी प्रसन्न मुद्रा मे देखा तो उसकी प्रसन्नता के लिए उन्होंने भी अपना घर वही बना लिया। समय-समय पर राजा हिमवत वहाँ से नीचे भारत के मैदानों मे जाया करते थे और कहा करते थे कि पानी के बिना धरती कष्ट में है, फसलें सूख रही है, पशु-पक्षी मर रहे है, और नर-नारी प्यासे ही दिन काट रहे है। लेकिन शिव अभी सो रहे हैं। जैसे कि उन्हे मनुष्य की कोई चिंता ही नही। उन्हें बचाने के लिए एक रास्ता है। यदि तुषार के समान पवित्र और हिम जैसी श्वेत कोई कन्या अपना घर छोड़कर वहाँ उन तपते मैदानो मे सदा सर्वदा के लिए जा बसे तो उसके इस स्वेच्छया जीवन-दान से विनष्ट होते हुए लोगों को जीवन प्राप्त हो जाएगा और उसका नाम भारत के सभी लोगो मे श्रद्धा और स्नेह से लिया जाएगा।

गंगा समझ गई कि महान् त्याग करने के लिए उसके पिता ने उसे आमंत्रित किया है। वह जाने के लिए तैयार हुई। बस उस गुफा के द्वार तक पहुँच गई। तभी एक चमत्कार हो गया। सुनहले चमकीले बालों और गोरे अंगोवाली वह छोटी-सी सुन्दर कन्या गायब हो गई और उसके स्थान पर निर्मल नीर वाला एक स्रोत प्रगट हो गया। झाग भरा पानी सुनहली चमकीली बालू पर नाच-सा उठा और एक ओर को भाग चला। भागती हुई धारा कहती गई, "मैं गंगा हूँ गगा। और अब मै धरती की प्यास बुझाने मरते लोगो के प्राण बचाने के लिए मैदानो मे जाती हूँ।" और जिधर भी गंगा गई उसके स्वागत मे फूल खिल उठे। बड़े-बडे वृक्षो ने उसका दरस-परस किया। बच्चे इसके तट पर खेलने लगे। पुरुष उस वेगवती धारा मे झूमने लगे, स्त्रियाँ शांत जल मे स्नान करने लगी। कुँआरी कन्या गंगा माता बन गई—जीवन की सरिता।

यही कारण है कि बहती हुई गंगा यही सोच रही है, "परोपकार के लिए आत्मबलिदान करना कर्त्तव्य है। दूसरों के लिए खुशहाली लुटाना ही सच्चा आनद है।" कृतज्ञता रूप मे इस पवित्र नदी से दूर प्राण तजता हुआ हिन्दू प्रार्थना करता है कि उसकी भस्मी गंगा की अजस्र धारा मे बहा दी जाए ताकि मृत्यु का आलिंगन करते हुए भी वह पुन: जीवन के मूल तत्व से जुड़ सके।

गोमुख का वातावरण इतना अलौकिक और अध्यात्मपूरित है कि यात्री का मन उसी मे रम जाता है और उस स्थान को छोड़कर आने की इच्छा नही होती। मुझे तो विवश होकर वापस आना पड़ा।

हम यहाँ से तपोवन जाना चाहते थे, जो तेरह किलोमीटर दूरी पर था पर स्वामी जी ने वहाँ जाने से रोक दिया और कहा, "मार्ग अत्यत कठिन है।

छह महीने से बर्फ मे डूबकर सारे पेड़ पौधे नष्ट हो गए है। वहाँ कोई संन्यासी नही है। अभी-अभी गगोत्री का मार्ग खुला है, वहाँ तक साधु-संतो के पहुँचने मे और पद्रह-बीस दिन लग जाएँगे। वहाँ जाने के लिए अक्तूबर का महीना अच्छा रहता है। अत: आप व्यर्थ वहाँ न जाइए।"

स्वामीजी के इनकार करने पर भी उनके चरणों में कुछ भेंट रखकर हम वापस गंगोत्री की ओर लौट पड़े। लौटते समय हमने देखा कि बर्फ की एक बहुत बड़ी चट्टान पहाड से लुढकते हुए सैकड़ो फुट नीचे भागी और भागीरथी मे जा गिरी। लुढकते समय उसकी आवाज मेघो के घोर गर्जन जैसी लगी। हम सब बहुत घबरा गए। शाम तक हम गगोत्री पहुँच गए। भैरो घाटी की उतराई-चढ़ाई पार कर रहे थे कि जह्नु महर्षि की कहानी याद आई।

राजा पुरुखा के वंश मे उत्पन्न राजा सुहोत्र के पुत्र थे जह्नु महर्षि। जब भगीरथ गंगा को मार्ग बताते हुए इधर से जा रहे थे तब इसी भैरो घाटी में जह्नु महर्षि तप कर रहे थे। उनकी संपूर्ण यज्ञशाला गंगा में डूब गई थी। उसे देख जह्नु महर्षि की आँखें क्रोध से लाल हो उठी। यज्ञ-पुरुष को परम समाधि द्वारा अपने मे स्थापित कर उन्होने संपूर्ण गगा जी को पी लिया। बाद में भगीरथ और देवर्षियों ने प्रार्थना कर इन्हे प्रसन्न किया और गंगा जी को इनकी पुत्री के रूप में प्राप्त कर लिया। इसीलिए गगा का एक नाम जाह्नवी पडा। 21 मई की रात हमने लका में काटी। फिर 22 मई को धराली पहुँचे। वहाँ सामान घर से अपना सब सामान छुड़ाकर बस मे उत्तरकाशी की ओर चल पड़े। दो बजे हम उत्तरकाशी पहुँच गए। बिड़ला धर्मशाला में कमरा लिया।

उत्तरकाशी का विस्तृत वर्णन स्कद पुराण के केदार खड मे मिलता है। यह तीर्थ स्थान भागीरथी के दाहिने तट पर वारुणावत पर्वत की गोदी में विद्यमान है। प्राचीन ग्रथों में उत्तरकाशी का वर्णन सौम्यवाराणसी नाम से भी मिलता है। बताया जाता है कि यहाँ वरुणा और असि नदियाँ भागीरथी में मिलती थी।

इस स्थान के साथ पौराणिक काल के अनेक ऋषियों के नाम जुड़े है। यहाँ महर्षि स्कद ने भी तपस्या की थी। परशुराम भी यहाँ रहे। उनके नाम पर यहाँ परशुराम मंदिर बना हुआ है। यहाँ किसी समय अनेक महात्मा, साधु और संत साधना करते रहे। इसका सबध महाभारतकालीन पाडवों से जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि दुर्योधन ने पांडवों को लाक्षागृह में भस्मीभूत करने का षड्यंत्र यहीं रचा था।

उत्तरकाशी समुद्र तल से 1,158 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। प्रसिद्ध

चीनी यात्री ह्वेनसाङ् ने भी इस स्थान की यात्रा की थी। उसने इसका नाम ब्रह्मपुत्र दिया है। उसने लिखा है कि इस स्थान का शासन स्त्री चलाती थी। उसका पति सेना-संगठन या कृषि कार्य करता था।

1857 की क्रांति के वीर योद्धा नाना फड़नवीस भी एकांतवास के रूप मे यहाँ रहे थे। जिस मकान मे वे रहे थे उसे अब राज्य सरकार ने सुरक्षित कर लिया है।

स्वामी ब्रह्मस्वरूपानंद जी के प्रयत्न से यहाँ एक संस्कृत विद्यालय भी चलता है। छात्रावास की व्यवस्था है।

यहाँ के मंदिरों का स्वरूप मैदानी भाग के मंदिरो से भिन्न है। मैदानों की तरह पर्वतों मे ऊँचे-ऊँचे मंदिर नही बनाए जाते। पर्वतो की जलवायु के अनुरूप उनका निर्माण किया जाता है। यह मंदिरो की नगरी है। कहावत है कि उत्तरकाशी में जितने कंकर हैं उतने ही शिव शंकर है।

प्रतिवर्ष मकर संक्रांति के दिन यहाँ बड़ा मेला लगता है। इस मेले में पर्वतीय ग्रामों से हजारों नर-नारी रंग-बिरंगी पोशाक पहनकर आते है। यह मेला लगभग एक सप्ताह चलता है। इस मेले में अनेक स्थानो से ग्राम देवता के डोले सजाकर लाए जाते है। पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियो पर बसे गांवों के ये श्रद्धालु व्यक्ति गाते-नाचते अपने डोलों के साथ यहाँ आते है और भागीरथी के तट पर उनकी पूजा करते हैं। इनके अपने वाद्ययंत्र होते है। जिनमे ढोल, रनसिंगा और तुरई मुख्य है। इस मेले मे पर्वतो के लोकगीतकार और नृत्यकार भी आते हैं। रात को देर तक नृत्य और संगीत का प्रदर्शन चलता रहता है।

कहा जाता है कि उत्तरकाशी मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश सदा निवास करते है। देव-दानव युद्ध की समाप्ति के बाद उन्हे यही शांति मिली। आस्तिकों का विश्वास है कि यहाँ स्नान एवं दान करने से मुक्ति और भक्ति अनायास मिलती है। यहाँ के मंदिरों मे विश्वनाथ का मंदिर सबसे प्रसिद्ध है। इस मंदिर का शिवलिंग मरकत मणि की आभा से सुशोभित है। कहा जाता है कि किरातार्जुनीय युद्ध यही हुआ था।

भरत मंदिर, शत्रुघ्न मंदिर, कालिमंदिर और एकादश रुद्र मंदिर भी देखने लायक हैं। ग्यारह शिवलिंग की शोभा देखते ही बनती है। यात्री भागीरथी के किनारे घंटो बैठकर शाम बिता सकते है।

यहाँ से थोड़ी दूर पर नेहरू पर्वतारोहण प्रशिक्षण संस्थान नामक संस्था है। इसमे पर्वतारोहण की शिक्षा दी जाती है। यहाँ देश-विदेश के लोग प्रशिक्षण प्राप्त करने आते है।

23 मई के सवेरे हम ऋषिकेश की ओर रवाना हुए। इस तरह हम उत्तरा-

खंड की यात्रा समाप्त कर उसी दिन ठीक साढ़े ग्यारह बजे ऋषिकेश के आश्रम आ पहुँचे। बस में ही मुझे बुखार आ गया था। आश्रम के कमरे में जाकर लेटा तो उठ न सका। तीन दिन तक 104 डिग्री बुखार रहा। दो दिन बाद मेरी पत्नी भी बुखार से पीड़ित हो गई। इस तरह इस बुखार के कारण हमें छह दिन तक ऋषिकेश में ठहरना पड़ा। मेरे बुजुर्ग मित्र एवं उनकी पत्नी ने तन-मन-धन से हमारी सेवा की थी। उस सेवा को हम जीवन भर भूल न सकेंगे।

उत्तराखंड की यात्रा समाप्त कर हम 30 मई को दिल्ली पहुँचे और वहाँ से मैसूर वापस आ गए।

उपसंहार

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रंथो में उल्लेखनीय ब्राह्मण ग्रथ है ऐतरेय। इंद्र ने उसम रोहित को "चरैवेति, चरैवेति" की शिक्षा देकर यात्रा को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। जीवन स्वयं ही एक लंबी यात्रा है। इस जीवन यात्रा को सफल बनाने के लिए कई छोटी-छोटी यात्राएँ करना अत्यत आवश्यक है। यात्रा द्वारा शिक्षा मिलती है। अनुभव-गम्य शिक्षा से जीवन मे सफलता मिलती है। पुराने जमाने से ही हिंदू संस्कृति ने यात्रा पर जोर दिया है। कैलास से लेकर कन्या-कुमारी तक सैकड़ों-हजारों यात्रा स्थल भारत मे हैं। भारत एक विशाल देश है, उसकी विविधता के दर्शन तभी साध्य है जब हम खुद यात्रा द्वारा उसके दर्शन कर सकें।

यात्रा में हम कई लोगों के सपर्क में आते है। जब जीवन का सूक्ष्म दर्शन प्रत्यक्ष हो जाता है तब भाषा के बधन से मुक्त हो, भाव बधन मे जकड़ जाते हैं।

भाव-जगत मे हम अनुभव करने लगते हैं कि हम सब एक हैं, एकमात्र मानव जाति के हैं। यात्रा में यात्री को परिस्थिति के अनुकूल अपने को बदलने की शक्ति मिलती है। कष्ट के समय मिलकर सामना करने की शिक्षा मिलती है। कठिन से कठिन समस्याओं को हल करने का सामर्थ्य मिल जाता है। साहसपूर्ण यात्रा मे मोह और ममता का आवरण खुल जाता है। सब अपने बन जाते है। प्रकृति के सौन्दर्य मे अपने को मूल स्वार्थ की संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर अनंत में तादात्म्य स्थापित कर, एकाकार होने की शिक्षा मिलती है।

यात्रा से भावात्मक एकता का बीज अंकुरित होकर फूलता और फलता है। उसका फल अत्यंत मधुर होता है। जीवन का कटु सत्य जब हमारे सामने आ उपस्थित होता है, तब यात्रा के अनुभव से हम उसका सामना करने मे समर्थ हो जाते है। सहिष्णुता, परोपकार, बुद्धि, सहकारिता एवं सहृदयता अपने आप जागृत होती है। खान-पान, रहन-सहन एवं आचार-विचार में आमूल परिवर्तन लाने की शक्ति मिल जाती है। हाँ, खान-पान की चीजों में

उत्तर और दक्षिण का बड़ा अंतर है। यहाँ सब चीजें सरसों के तेल से बनती है, जबकि दक्षिण में नारियल और मूंगफली के तेल से। अतः आदत न होने से सरसों के तेल से बनी चीजें खाने मे हमें कुछ असुविधा होती है। दक्षिण और उत्तर के मसालो मे भी काफी अतर है। दाल में इमली मिलाने का रिवाज भी इधर नही है। चावल हर कही मिल जाता है। यह अच्छा रहता है कि हम यात्रा मे अपनी रुचि के कुछ खाद्य पदार्थ अपने साथ लेते जाएँ। इतना अतर होते हुए भी इस यात्रा में मैंने यह अनुभव किया कि चाहे उत्तर हो या दक्षिण, भारत भर में एक समानता की लहर व्याप्त है, विभिन्नताओं मे एकता के दर्शन होते है। दुख के समय अपना दुख और सुख के समय अपना सुख बाँटने के लिए सब तत्पर रहते हैं। वहाँ दक्षिण और उत्तर का भेद सर्वथा मिट जाता है।

मैंने अनुभव किया है :

नाहं वसामि दक्षिणे, नाह वसामि उत्तरे।
नाहं वसामि पश्चिमे, नाह वसामि पूर्वे।
वसामि सकले राष्ट्रे, राष्ट्रं मम परायणम्।